

देश के बहुचर्चित हनीमून मर्डर केस की सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट की एक बेंच ने आधुनिक जीवनशैली से पारिवारिक विघटन पर जो गंभीर टिप्पणी की, मानो उसने भारतीय समाज की दुखती रग पर हाथ रख दिया। सोनम रघुवंशी मामले में मेघालय सरकार की याचिका पर सुनवाई करते हुए न्यायमूर्ति एम.एम. सुंदरेश और न्यायमूर्ति पी.बी. वराले की बेंच ने गंभीर टिप्पणी की कि आज पति-पत्नी के रिश्तों में भरोसा कम हो रहा है। पहले संयुक्त परिवार रिश्तों को संभालते थे। संयुक्त परिवार इंसान को निराशा सहना और एडजस्ट करना सिखाते थे। लेकिन आज छोटे परिवारों की व्यवस्था के कारण पुरुषों व महिलाओं में डिप्रेशन बढ़ रहा है। लोग छोटी-छोटी बातों में चिढ़ने लगते हैं। गैजेट्स की लत ने इस संकट को और बढ़ाया है। जस्टिस सुंदरेश ने तो यहां तक कहा कि आज बच्चा किसी बात पर जरा रो दे, माता-पिता उसे मोबाइल थमा देते हैं। निस्संदेह, भावनाओं का विकल्प कभी गैजेट्स नहीं हो सकते।



भ्रष्टाचार और फासी शक्तियों के विरुद्ध शंखनाद

नवयुग

R.N.I. No. 15990/67

संस्थापक संपादक: स्व. श्री चिंजीव जोशी 'सरोज'

हिन्दी पाक्षिक

वर्ष-60 अंक-4

जयपुर, शुक्रवार, 31 जुलाई, 2026

मूल्य- 10 रुपए पृष्ठ- 8

कॉकरोच जनता पार्टी की सह कठिन सवाल अब आगे की दिशा का भी है



इस पक्ष का विशेष सम्पादकीय विनोद जोशी द्वारा

कॉकरोच जनता पार्टी को इसका श्रेय है कि उसने भारत की दहती शिक्षा एवं परीक्षा व्यवस्था को अहम मुद्दा बना दिया है। शिक्षा की बिगड़ती हालत पर अब गांव-कस्बों तक चर्चा होने के संकेत मिल रहे हैं। असल में अक्सर वो समस्या ही मुद्दा बनती है, जो लोगों के मन को पहले से परेशान किए हुए होती है। जब उन मुद्दों पर कोई विश्वसनीय पहल होती है, तो लोग उसकी तरफ आकर्षित हो जाते हैं।

वैसे अभिजित दीपके ने जो पहल की, वह सिर्फ शिक्षा को लेकर नहीं थी। बल्कि प्राथमिक तौर पर वह भारतीय समाज में बढ़ती जा रही घुटन को लेकर थी। यह घुटन, इस विश्वास के टूटने से बढ़ी है कि व्यवस्था में लोगों की कोई भूमिका रह भी गई है। सरकार, संवैधानिक संस्थाओं, और लोकतांत्रिक जवाबदेही तय करने वाली व्यवस्था पर एक विशेष राजनीतिक परियोजना का कब्जा हो जाने की धारणा गहराती चली गई है। ऐसे में इस यकीन का आधार लगातार क्षीण होना लाजिमी है।

इसी बीच निरंतर गहराती जा रही अवसरहीनता की स्थिति में युवा वर्ग को अपना भविष्य अंधकारमय लगने लगा है, तो इसे आसानी से समझा जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश जस्टिस सूर्य कांत ने जब इस स्थिति के शिकार युवाओं को कॉकरोच कहकर उनके प्रति शासक समूहों की हेयदृष्टि का इज्जार किया, तो जाहिर है, उस पर बड़े पैमाने पर आक्रोश और बेचैनी महसूस की गई। इस पृष्ठभूमि के बीच जब अभिजित दीपके ने सोशल मीडिया पर पहला की तो युवा वर्ग बड़ी संख्या में रातोंरात जुड़ता चला गया। इससे आगे बढ़कर यह पहल अब एक व्यापक जमीनी आंदोलन में बदल चुकी है।

दहती गई परीक्षा व्यवस्था के लिए जवाबदेही का सवाल उठाकर यह आंदोलन ठोस रूप लेने में कामयाब हुआ है। जवाबदेही के प्रथम बिंदु के रूप में उसने शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे की मांग रखी, क्योंकि सत्ताधारी भाजपा अब तक इस सिद्धांत पर चलती आई है कि उसकी सरकार में 'इस्तीफे नहीं होते', तो यह आंदोलन उत्तरदायित्व के व्यापक प्रश्न से जुड़ गया। इस तर्क ने लोगों के मानस को छुआ कि जो सरकार उनके वोट से चुनी जाती है, वह अपनी बड़ी से बड़ी विफलता, अकुशलता, यहां तक कि भ्रष्टाचार के मामलों में भी जवाबदेही लेने से इनकार कर रही है। दिल्ली में 20 जुलाई को कॉकरोचों ने 'संसद मार्च' का आयोजन किया, तो वह सत्ताधारियों की इसी सोच के खिलाफ जन लामबंदी का मौका बन गया। केंद्र सरकार ने जुटे नौजवानों के प्रति दमन की नीति अपना कर अब तक उदासीन रहे बहुत से लोगों को भी यह सोचने को मजबूर किया है कि क्या लोकतंत्र में जवाबदेही की मांग करना गलत है? अब यह सवाल गूंज रहा है कि क्या दोषमुक्त परीक्षा व्यवस्था की मांग करना जुर्म है? अब सवाल यह भी उठ चुका है अगर पुलिस लोगों की

शेष भाग पृष्ठ 2 पर

सत्ता का आम जनता के प्रति जिम्मेदार होना जरूरी!

पक्ष-विपक्ष के मध्य मीडिया की निष्पक्षता सवालों के घेरे में

विनीत नारायण

चाहे कोई भी दल सत्ता में हो जब तक उसका शासन और प्रशासन आम जनता के प्रति जवाबदेह न हो तब तक वो कितना भी ढेल पीटता रहे, जनता उसके दावों पर विश्वास नहीं करती। आम जनता को बड़े स्तर के बड़े घोटालों से इतना सरोकार नहीं होता जितना उनकी रोज की जिंदगी में पुलिस और प्रशासन के भ्रष्टाचार से होता है। इस स्तर का भ्रष्टाचार, हुममरानों का अहंकार और आम मतदाता की उपेक्षा का खामियाजा सीधा मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री को भुगतना पड़ता है।

आज मीडिया दो खेमों में बंटा हुआ है। एक तरफ हैं, निजी टीवी चैनल और दूसरी तरफ है सोशल मीडिया। निजी टीवी चैनलों के मालिकों को सरकार विज्ञापन के नाम पर बहुत मोटी रकम देती है। इसलिए इन चैनलों

के उन एंकरों को भी बहुत मोटी रकम मिलती है जो रात-दिन सरकार का एकतरफा गुणगान करते हैं। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है। पिछली सरकारों में जब निजी चैनल और सोशल मीडिया दोनों ही नदारद थे तब भी ये बंटवारा इस तरह था कि सरकारी नियंत्रण वाला दूरदर्शन और सरकार से विज्ञापनों के नाम पर मोटा पैसा लेने वाले अखबार, तत्कालीन सरकार का भौंपू हुआ करते थे।

जबकि दूसरे अखबार विपक्षी दलों से समर्थन लेकर सरकार की आलोचना करते थे। हालांकि उस दौर में ये फर्क इतना प्रखर नहीं था कि आम आदमी उसकी गहराई समझ सके। पर आज जो देश में जो हो रहा है उसमें दोनों ही पक्ष एकतरफा अभियान चलाते हैं। जिससे हकीकत पता नहीं चल पाती। उदाहरण के तौर पर, सोशल मीडिया में आए दिन वीडियो आते हैं कि भाजपा सरकारों के बनाए पुल ताश के पत्तों की तरह ढहते रहते हैं और भाजपा सरकारों के बनाए राजमार्गों पर जगह-जगह भारी गड्डे हो गए हैं।

ऐसा ही एक वीडियो समाचार आया कि नवनिर्मित दिल्ली-देहरादून एक्सप्रेसवे बनते ही जगह-जगह टूट गया है। पिछले हफ्ते जब मैं इस राजमार्ग पर पहली बार गया तो लगातार

कार की खिड़की से बाहर देख रहा था कि वो गड्डे कहां हैं? पर मुझे ऐसा कोई गड्डा नजर नहीं आया। बल्कि ये राजमार्ग इतना बढ़िया बना है कि हम मात्र डेढ़ घंटे में दिल्ली से मुजफ्फरनगर पहुंच गए।

सरकारी व्यवस्था में भ्रष्टाचार होना कोई नई बात नहीं है। मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'नमक का दारोगा' 150 साल पहले भारत में चल रहे भ्रष्टाचार का एक नमूना मात्र है। 2500 साल पहले राजनीति के महारथी चाणक्य पंडित ने कहा था, 'शहद के गोदाम की रखवाली करने वाले के होठों पर शहद लगा मिलेगा।' आजादी के बाद से केंद्र और राज्यों की सभी सरकारों ने देश के संसाधनों को लूटने में कोई कसर नहीं छोड़ी। क्या वजह है कि नेता किसी भी दल का क्यों न हो, अगर वो पार्षद से लेकर मंत्री तक कभी भी किसी भी पद पर रहा होगा तो उसकी आर्थिक हैसियत उस दौर में कई गुना बढ़ी होगी।

ये कोई छिपी बात नहीं है। अपवाद तो हमेशा और हर जगह होते हैं। पर आम धारणा तो यही है कि राजनीति कोयले की दलाली की तरह एक ऐसा पेशा है जिसमें हाथ काले होते ही हैं। इसलिए मौजूदा दौर में संघ और भाजपा पर जो तीव्र हमला हो

शेष भाग पृष्ठ 2 पर

भारतीय मीडिया निष्पक्ष नहीं (सरकार बनाम विपक्ष)



प्रथम पृष्ठ का शेष भाग...

रक्षा के लिए है, तो उसने किशोर उम्र के छात्र-छात्राओं पर जुल्म क्यों ढाए? इस बात की चिंता दिखने लगी है कि छात्राओं के कपड़े फाड़ने, नौजवानों को लाठी से पीटने, उन्हें करंट लगाने, और यहां तक कि (एक अंग्रेजी अखबार की रिपोर्ट के मुताबिक) उन पर छर्छों (पैलेट) दागने की बर्बरता का क्या औचित्य हो सकता है?

आरोप यहां तक हैं कि पुलिस के संरक्षण में सादी पोशाक में आए सत्ताधारी जमात के समर्थक असामाजिक तत्वों ने छात्र-नौजवानों पर हमले किए। अगर ऐसा हुआ, तो क्या इसे किस तर्क पर कानून-व्यवस्था लागू करने की सामान्य प्रक्रिया हिस्सा माना जाएगा? क्या ऐसा होना लोकतंत्र की बुनियादी शर्तों को तिलांजलि देने के रूप में नहीं देखा जाएगा?

इन सारे सवालों से छात्र-नौजवान ही नहीं, बल्कि आम जनता का बहुत बड़ा हिस्सा भी बेचैन हुआ है। इस अहसास ने उनकी बेचैनी को और बढ़ाया है कि जिन सूत्रों के जरिए सत्ताधारियों की जिम्मेदारी तय करने का भरोसा उन्हें रहता था, वे आज हाथ से फिसलते हुए नजर आ रहे हैं। संस्थाओं पर 'कैप्चर' की आम धारणा इस अहसास का एक पहलू है। उससे भी बड़ा पहलू भटके सत्ताधारी को अपने वोट से दंडित कर सकने का टूटता हुआ भरोसा है।

चुनावों में समान धरातल का नहीं रहना, सत्तापक्ष के प्रति चुनावी ईमानदारी और पारदर्शिता का भरोसा न रह पाना भी इस अनुभूति का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष और भी तेज संवेग के साथ खड़ा है कि सत्ताधारी दल को दंडित करने के लिए आप चाहे जिसे चुनो, निर्वाचन के बाद दल-बल करवा कर उसे सत्ताधारी खेमे से मिला लिया जाएगा। तो फिर लोग क्या करें?

यही आज सबसे बड़ा सवाल है। और यही सवाल कॉकरोच आंदोलन की सबसे बड़ी ताकत है। कॉकरोचों के दमन ने इस प्रश्न के परिमाण को कई गुना बढ़ा दिया है। वैसे, इस तरह का दमन पहली बार हुआ हो—ऐसा नहीं है। इससे भी अधिक बर्बर दमन की कहानियां मौजूद रही हैं। लेकिन तब शिकार या तो समाज के वंचित और पिछड़े वर्ग थे, या फिर ऐसी घटनाएं देश की परिधि पर स्थित इलाकों में हुईं। आम तौर पर मनुष्य की चेतना या संवेदनशीलता हर मामले में समान अथवा वैश्विक नहीं होती। अक्सर वह वर्ग एवं क्षेत्र सापेक्ष होती है।

इस सवाल से भारत के अभिजात्य वर्ग में भी सेंध लगती दिखाई दे रही है। दरअसल, कॉकरोच परिघटना मूल रूप से भारतीय अभिजात्य में आरंभिक दरार का परिणाम रही है। अभिजात्य वर्ग (उच्च मध्यम एवं

मध्य वर्ग) का एक हिस्सा अब इसको लेकर जागरूक हुआ है कि जब वे लोग हिंदू धर्म का पुराना गौरव वापस लाने और भारत को विश्व गुरु बनाने की तमाम कहानियों में खोये हुए थे, तब असल में सबकी खुशहाली एवं देश की उन्नति की जमीन परत-दर-परत दरकाई जा रही थी।

पहले जिस भ्रष्टाचार और अकुशलता का साया रहता था, इस नए दौर में उसका साम्राज्य कई गुना और फैल गया। इन सबका सघन रूप आज शिक्षा से लेकर परीक्षा और अर्थव्यवस्था से लेकर राजनीति तक में देखने को मिल रहा है। देश के अभिजात्य वर्ग में अब यह भावना दिखाई देने लगी है कि आज नहीं तो कल वे भी इसके शिकार होंगे।

सारी परिस्थितियों के बीच इस आंदोलन के सामने कठिन चुनौतियां भी खड़ी हैं। फिलहाल, उसके सामने दो संभावनाएं हैं। सबसे पहले मोदी युग में असंतोष और असहमति के आंदोलनों के हथ्र है। 2021 में किसान आंदोलन को मिली सीमित सफलता को छोड़ दें, तो इस सरकार में हर आंदोलन गतिरोध की स्थिति में पहुंच कर ठहराव का शिकार हुआ है। किसान भी सिर्फ अपने खिलाफ बने तीन कानूनों को वापस कराने में सफल हुए— वे स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशों के अनुरूप न्यूनतम समर्थन मूल्य पाने, कर्ज माफी, और विद्युत विधेयक को वापस कराने जैसी अपनी सकारात्मक मांगों को नहीं मनवा पाए। गतिरोध के स्थल देश भर में फैले हुए हैं। मणिपुर, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख, वक्फ कानून, उपासना स्थल अधिनियम के उल्लंघन, बुल्डोजर 'जस्टिस', निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति प्रक्रिया में बदलाव, हिंदी थोपने की शिकायतें, परिसीमन से संबंधित विवाद, सरकारी एजेंसियों के दुरुपयोग, राजनीतिक सत्ता के केंद्रीकरण तक यह सूची इतनी लंबी है कि उसे किसी एक आलेख में समेटना असंभव होगा।

यहां इन मिसालों का जिक्र सिर्फ इसलिए हुआ कि क्या कॉकरोच आंदोलन भी इसी तरह के गतिरोध के साथ ठहराव का शिकार हो जाएगा, अथवा वह कोई नई दिशा दिखा सकेगा? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए राजनीतिक अर्थव्यवस्था के उस संदर्भ पर गौर करना अनिवार्य हो जाता है, जिसमें लोकतांत्रिक आकांक्षाओं वाले आंदोलन होते हैं। यह दुनिया भर का अनुभव है कि नव-उदारवादी नीतियों को अपनाए जाने के बाद संबंधित देशों की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के स्वरूप में क्रमशः, लेकिन मूलभूत परिवर्तन आए हैं। उसके पहले जब इन देशों में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा थी, तब उन

आंदोलनों के प्रति सरकारों का नजरिया अपेक्षाकृत उदार एवं संवेदनशील होता था, जो सीधे व्यवस्था के वर्गीय आधार या देश की अखंडता को चुनौती नहीं देते थे। लेकिन नव-उदारवादी दौर में, जैसे-जैसे राज्य पर एकाधिकारी पूंजी का शिकंजा कसता गया है, संवैधानिक दायरे के लोकतांत्रिक आंदोलनों के प्रति भी नजरिया दमनकारी हो गया है।

भारतीय राज्य के चरित्र में ऐसे परिवर्तन की शुरुआत वैसे तो साढ़े तीन दशक पहले हो गई थी, 2014 में मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद इसमें गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों प्रकार के बदलाव देखने को मिले। एक समझ यह है कि मोदी काल में भाजपा की असल ताकत मोनोपॉली पूंजी है, जिसने अपने धनबल, प्रचार तंत्र और संस्थाओं पर नियंत्रण की क्षमता के जरिए मोदी सरकार को संवैधानिक लोकतंत्र को सिकोड़ देने में सक्षम बना रखा है। इस भूमिका के साथ मोदी सरकार उसका कुशल उपकरण साबित हुई है।

अगर इस दौर के आंदोलन यह बुनियादी समझ विकसित नहीं करते और उसके अनुरूप रणनीति नहीं अपनाते, तो उनके टिकाऊ सकारात्मक योगदान की संभावना सीमित ही रहेगी। जहां तक कॉकरोच आंदोलन की बात है, तो जाहिरा तौर पर इसका रूप काफी कुछ हाल के वर्षों में पास-पड़ोस के देशों में दिखी जेन-जी के आन्दोलनों से मिलता-जुलता है। इसीलिए यह अध्ययन उपयोगी रहेगा कि बांग्लादेश या नेपाल में इस तरह के आंदोलन के बाद हुई उतनी बड़ी उथल-पुथल से अंततः ठोस क्या हासिल हुआ?

कॉकरोच आंदोलन के सिलसिले में पहली सफलता है मोदी सरकार धर्म प्रधान को शिक्षा मंत्री पद से त्यागपत्र ले लेती है। अब आगे यदि सरकार दिल्ली में दमन की न्यायिक या किसी अन्य प्रकार की जांच कराने पर राजी हो जाती है, तो फिर कॉकरोच आंदोलन का एजेंडा क्या होगा? क्या शिक्षा व्यवस्था में सुधार या सिकुड़ गई लोकतांत्रिक आजादियों को बहाल कराने का कोई ठोस एजेंडा और उसके लिए कार्ययोजना आंदोलन दे पाएगा? यहां यह स्पष्ट कर लिया जाए कि इन सवालों को उठाने का मतलब इस आंदोलन की अहमियत को कम करके आंकना नहीं है। इस आंदोलन का अब तक स्वतःस्फूर्त स्वरूप रहा है। आंदोलनकारी महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर की तस्वीरों तथा भारतीय संविधान की कॉपी हाथ में रखकर इसका संकेत देते रहे हैं कि वे किस दायरे में इसे चलाना चाहते हैं। आरंभिक हफ्तों में, जब उनके सामने नौजवानों को लामबंद करने की चुनौती

थी, तो उन्होंने वामपंथी छात्र संगठनों और उनके नारों को अपने मंच पर जगह दी। लेकिन जैसे ही आंदोलन बड़ा हुआ, उन्होंने 'हम क्या चाहते- आजादी' जैसे नारों को प्रतिबंधित कर दिया। इससे आंदोलन नेतृत्व का रुझान एवं प्राथमिकताएं और स्पष्ट हो गई हैं।

वैसे रुझान और प्राथमिकताएं चाहे जो हों, आगे चल कर आंदोलन के सामने संगठन के ढांचे, कार्यकर्ताओं को जोड़ने और उनके प्रशिक्षण, उनके जरिए समाज के विभिन्न वर्गों से संबंध या गठबंधन बनाने, और एक व्यापक एजेंडे पर आम सहमति तैयार करने का मुद्दा उनके सामने आएगा। अगर इस बात की समझ और इस चुनौती को स्वीकार करने का जज्बा नेतृत्व ने नहीं दिखाया, तो उसका परिणाम होगा गतिरोध की अवस्था में आंदोलन ठहर जाना।

यह बात इसलिए इतने भरोसे के साथ कही जा रही है, क्योंकि कुछ हाथों में पूंजी के अति-संकेंद्रण, उसे संभव बनाने के लिए समाज में सांप्रदायिक वैमनस्य को हवा और ज्ञान-विज्ञान विरोधी मानसिकता के प्रसार के साथ-साथ उच्च गुणवत्ता वाली वैसी शिक्षा व्यवस्था अमल में नहीं रह सकती, जो रोजगार, खुशहाली एवं उदात्त संस्कृति का जनक बने।

यह स्पष्ट हो चुका है कि किसी एक मुद्दे पर सीमित रहकर बेहतर नतीजे हासिल कर लेना फिलहाल संभव नहीं रह गया है। इसीलिए ऐसी दीर्घकालिक राजनीति की जरूरत उत्तरोत्तर अधिक स्पष्ट होती जा रही है, जो पांच साल के चुनावी चक्र से प्रेरित ना हो। वैसी राजनीति, जो वोट के अधिकार एवं वोटिंग मशीनों से आगे जाकर सोचने में समर्थ हो- जिसके एजेंडे पर परिवर्तन, रचना एवं निर्माण का बड़ा लक्ष्य हो। अभी भारत में विमर्श का जो स्तर है, उसके बीच पेपर लीक जैसी घटनाओं से अपने भविष्य को लेकर चिंतित युवा वर्ग से राजनीति की नई और व्यापक समझ दिखाने की अपेक्षा यथार्थवादी नजरिया नहीं होगा। जिनसे ऐसी अपेक्षा हो सकती थी, उनकी नाकामियों का बोझ इन युवाओं के कंधों पर डालना उचित भी नहीं होगा। फिलहाल, तो यही कहा जा सकता है कि इन युवाओं ने अपनी ताजा सक्रियता एवं गतिविधियों से समाज में गहराती गई निराशा को एक हद तक तोड़ा है। उन्होंने संकेत दिए हैं कि नई पीढ़ी नफरत एवं झूठे दिलासों पर टिकी सियासत के प्रभाव से निकल रही है। ये आस जगाई है कि ठोस हालात ने बात यहां तक पहुंचाई है, तो आगे वह वहां तक भी जा सकती है, जहां से समाधान का असल रास्ता शुरू होता है!

प्रथम पृष्ठ का शेष भाग

रहा है वो क्या उन राजनेताओं द्वारा किया जा रहा है जिनका अपना दामन पाक साफ है? अगर नहीं तो फिर गुलाम अली की गजल की वो लाइन दोहराना अनुचित न होगा, हंगामा है क्यों बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है-

प्रधान मंत्री मोदी ने 'स्वच्छ भारत अभियान' से लेकर, 'मेक इन इंडिया', 'डिजिटल इंडिया', 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ', 'प्रधान मंत्री मुद्रा योजना', 'प्रधान मंत्री उज्ज्वला योजना', 'प्रधान मंत्री आवास योजना', 'आयुष्मान भारत', 'जल जीवन मिशन', 'स्किल इंडिया मिशन', 'नमामि गंगे', 'सांसद आदर्श ग्राम योजना', 'स्टार्टअप इंडिया', 'प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना', 'प्रधान मंत्री मुद्रा योजना', 'अटल पेंशन योजना', 'प्रधान मंत्री सुरक्षा बीमा योजना', 'आत्मनिर्भर भारत अभियान', 'उजाला योजना', 'अमृत भारत स्टेशन योजना', 'वन नेशन वन राशन कार्ड' जैसी तमाम योजनाएं और अभियान चलाए।

विपक्ष कहता है कि ये सब फ्लॉप हो गए, कहीं कुछ नहीं हुआ। जबकि इसका दूसरा पक्ष भी सामने

सत्ता का आम जनता के प्रति जिम्मेदार होना जरूरी!

अहंकार और आम मतदाता की उपेक्षा का सीधा खामियाजा मुख्यमंत्री या प्रधान मंत्री को भुगतना पड़ता है।

जरूरत इस बात की है कि कोई ऐसी व्यवस्था बने जिसके अंतर्गत आम जनता की छोटी सी छोटी शिकायत पर तुरंत कारवाही हो और उसे राहत मिले। इस दिशा में तमिलनाडु के वर्तमान मुख्यमंत्री सी जोसफ विजय ने जो पहल की हैं उसका बहुत अच्छा संदेश आम जनता के बीच गया है। आगे चल कर वो कितने सफल होंगे ये तो समय ही बताएगा। पर तमिलनाडु तो एक राज्य है, आवश्यकता हर राज्य में ऐसे ही सुधार की है। डबल इंजन का दावा करने वाली प्रांतीय सरकारों में यह काम केंद्र सरकार की पहल पर अविलंब शुरू होना चाहिए। साथ ही महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियां यदि भ्रष्टाचार में बदनाम हुए अफसरों और राजनेताओं की होती है तो उससे सरकार की छवि बहुत खराब होती है। भ्रष्टाचार मुक्त शासन देने के उसके दावे खोखले साबित होते हैं।

एक बात और; इस देश में ईमानदार

अफसरों और प्रतिष्ठित सामाजिक लोगों की संख्या इतनी कम नहीं है कि वे शासन और प्रशासन को जवाबदेह बनने के लिए मजबूर न कर सकें। आज के ए आई युग में किसी भी व्यक्ति के जीवन के विषय में पता लगाना कठिन कार्य नहीं है। आधुनिक तकनीकी का इस्तेमाल करके देश के हर जिले में ऐसे लोगों की सूची बनाई जानी चाहिए और उन्हें कुछ अधिकार देकर स्थानीय शासन और प्रशासन पर निगरानी रखने के काम सौंपना चाहिए। अगर ऐसा हो सका तो ये जनता और सरकार के बीच की खाई को पाटने का एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

एथेनॉल मिश्रित पेट्रोल नीति का विरोध

जयपुर में 'एम-20 आंदोलन' की घोषणा



जयपुर के डेयरी किसानों के एक समूह ने केंद्र सरकार की एथेनॉल मिश्रित पेट्रोल नीति के विरोध में 'एम-20 आंदोलन' शुरू करने की घोषणा की। किसानों ने कहा कि इस अभियान को देशभर में चलाया जाएगा।

जयपुर दुग्ध उत्पादक संघर्ष समिति के अध्यक्ष रमन यादव ने यहां आयोजित प्रेस वार्ता में कहा कि यह आंदोलन एथेनॉल मिश्रण नीति और उसके प्रभावों को लेकर चिंतित डेयरी किसानों, युवाओं और आम नागरिकों की आवाज बनेगा।

उन्होंने कहा यह 'एम-20' नाम दूध और पानी के मिश्रण के प्रतीक के रूप में रखा गया है, जो पेट्रोल में एथेनॉल मिलाने की सरकार की नीति का प्रतीकात्मक विरोध है।

रमन यादव ने कहा कि यह आंदोलन पूरी तरह शांतिपूर्ण और लोकतांत्रिक तरीके से जन अभियान के रूप में चलाया जाएगा।

उन्होंने बताया कि विरोध के तहत मिश्रित 'एम-20' दूध प्रतीकात्मक रूप से उन भाजपा मंत्रियों को भेजा जाएगा, जो एथेनॉल मिश्रण नीति का समर्थन करते हैं। यादव ने आरोप लगाया कि सरकार एथेनॉल मिश्रण के नाम पर मिलावट को सामान्य बनाने का प्रयास कर रही है।

उन्होंने कहा यह नीति उपभोक्ताओं, ग्रामीण परिवहन व्यवस्था तथा कृषि और डेयरी आधारित अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर रही है।

उन्होंने बताया कि इस अभियान की प्रेरणा जयपुर में हाल ही में डेयरी किसानों द्वारा किए गए प्रतीकात्मक प्रदर्शन से मिली, जिसमें किसानों ने एम-0, एम-20, एम-50 और एम-100 लिखे दूध-पानी के मिश्रण प्रदर्शित कर एथेनॉल मिश्रित पेट्रोल नीति का विरोध जताया।

जयपुर दुग्ध उत्पादक संघर्ष समिति ने केंद्र सरकार से एथेनॉल मिश्रित पेट्रोल नीति वापस लेने की मांग की। साथ ही समिति ने इस नीति से लाभान्वित होने वालों और नीति निर्माण की प्रक्रिया की स्वतंत्र जांच कराने की भी मांग की।

राजस्थान में घर खरीदना हुआ महंगा

जमीनों की आरक्षित दरें 47 फीसदी तक बढ़ाई; सबसे ज्यादा कीमतें जयपुर की वाटिका योजना में बढ़ी

जयपुर

राजस्थान में आमजन को सस्ते आवास देने के लिए सरकार ने राजस्थान हाउसिंग बोर्ड प्रशासन ने हमारा प्रयास-सबको आवास का नारा दिया था। लेकिन लगातार जमीनों की बढ़ती आरक्षित दरें अब इस नारे को फेल साबित कर रही हैं। क्योंकि बोर्ड प्रशासन ने एक बार फिर प्रदेश में बसाई कॉलोनियों की आरक्षित दरों में इजाफा किया है। ये बढ़ोतरी 47 फीसदी तक की है।

हाउसिंग बोर्ड से जारी नई दरों में सबसे ज्यादा कीमतें जयपुर की वाटिका योजना में बढ़ाई हैं। इस योजना पहले जिस जमीन की आरक्षित दर 7045 रुपये प्रति वर्गमीटर थी, उसे बढ़ाकर अब 10,370 रुपये प्रति वर्गमीटर (47 फीसदी का इजाफा) कर दिया है।

इसी तरह जगतपुरा स्थित इंदिरा गांधी नगर की आरक्षित दरों में 14.70 फीसदी की बढ़ोतरी

की है। यहां पहले आरक्षित दर 23,850 रुपये थी, जो अब बढ़कर 27,355 रुपये प्रति वर्गमीटर हो गई। सांगानेर, प्रताप नगर योजना में आरक्षित दर 23,870 रुपये प्रति वर्गमीटर से बढ़ाकर 25,900 रुपये कर दी।

यहां बढ़ी 10 फीसदी से ज्यादा दरें

ब्यावर की गढ़ी थोरियान योजना में करीब 12 फीसदी की बढ़ोतरी की है। यहां पहले आरक्षित दर 13500 रुपये थी, जो अब बढ़कर 15095 रुपये प्रति वर्गमीटर कर दी। धौलपुर के बाड़ी रोड स्थित योजना में 22 फीसदी दरें बढ़ाकर 16,305 रुपये प्रति वर्गमीटर कर दी, जो पहले यहां 13,360 रुपये प्रति वर्गमीटर थी।

बीकानेर के शिव बाड़ी योजना में जमीनों की दरें 5470 से बढ़ाकर 7105 (करीब 30 फीसदी) रुपये प्रति वर्गमीटर कर दी। हनुमानगढ़ डीटीओ में बसाई योजना में भी बोर्ड ने आरक्षित दरें 11605 से बढ़ाकर 12910 (11.24 फीसदी)

कर दी।

हाड़ौती की योजनाओं में 34 फीसदी तक बढ़ी दरें

कोटा स्थित मांगरोल हाउसिंग योजना में दरें जहां पहले 5655 रुपये थी, वह (9.54 फीसदी) बढ़कर अब 6195 रुपये प्रति वर्गमीटर, स्वामी विवेकानंद योजना में 19,670 से बढ़ाकर 21,455 रुपये (9 फीसदी) प्रति वर्गमीटर, कुन्हारी में 25,380 से बढ़ाकर 33,890 (33.53 फीसदी) की बढ़ोतरी की है।

इसी तरह बूंदी के लाखेरी हाउसिंग योजना में 3420 से बढ़ाकर 4020 प्रति वर्गमीटर (17.54 फीसदी), नैनवा स्कीम में 8965 रुपये से बढ़ाकर 10,015 (11.71 फीसदी) और बारां जिले की गजनपुरा योजना में 7765 से बढ़ाकर 8745 रुपये प्रति वर्गमीटर (12.62 फीसदी) कर दी है।

विधानसभा का मानसून सत्र 20 अगस्त से:UCC बिल लाएगी सरकार, आमने सामने होंगे कांग्रेस-बीजेपी

जयपुर

विधानसभा का मानसून सत्र 20 अगस्त से शुरू होगा। यह सत्र भी बजट सत्र की तरह ही हंगामेदार रहेगा। यूसीसी बिल के अलावा कई मुद्दों पर हंगामा होना तय है।

राज्यपाल ने विधानसभा सत्र बुलाने की मंजूरी दे दी है। राज्यपाल की मंजूरी के बाद विधानसभा ने सत्र बुलाने की अधिसूचना जारी कर दी है। मानसून सत्र में इस बार सरकार समान नागरिक संहिता को बहस के बाद पारित करवाएगी।

यूसीसी बिल पर सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच टकराव के आसार हैं। यूसीसी बिल के ड्राफ्ट को लेकर आम लोगों से भी राय ली जा रही है। आम लोगों की राय को यूसीसी बिल में शामिल किया जाएगा। इस राय के आधार पर ही यूसीसी बिल फाइनल करके सदन में रखा जाएगा।

सप्ताह भर चल सकता है सत्र

विधानसभा का मानसून सत्र

सप्ताह भर तक चलने के आसार हैं। सत्र को लेकर फाइनल फैसला विधानसभा की कार्य सलाहकार समिति की बैठक में होगा। 20 अगस्त या इससे पहले विधानसभा में बीएसी की बैठक बुलाए जाने के आसार हैं। बीएसी की बैठक में ही मानसून सत्र का कामकाज तय होगा।

विधानसभा का मानसून सत्र बजट सत्र की तरह ही हंगामेदार रहेगा। यूसीसी बिल के अलावा कई मुद्दों पर हंगामा होना तय है।

पेपरलीक पर जेन जी के आंदोलन, सीमावर्ती जिलों में धार्मिक स्थल तोड़ने के मुद्दे पर कांग्रेस सदन में हमलावर रुख अपनाएगी। पेपरलीक के मुद्दे पर कांग्रेस और बीजेपी के बीच सदन में विवाद होना तय है। नीट पेपरलीक के मुद्दे पर कांग्रेस सत्ता पक्ष को घेरने का प्रयास करेगी। बीजेपी विधायक कांग्रेस सरकार के दौरान हुए पेपरलीक के मुद्दे से उसका जवाब देंगे। पहले भी इस मुद्दे पर खूब हंगामा हुआ है।

जयपुरवासियों के लिए राहत- पानी के बिल के लिए नहीं लगानी होगी लाइन, क्यूआर कोड से मोबाइल पर मिलेगा 10 महीने का रिकॉर्ड

जयपुर

शहर के पेयजल उपभोक्ताओं के लिए जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग राहत भरी खबर लेकर आया है। विभाग ने नया जयपुर वाटर बिलिंग सिस्टम तैयार किया है, जिसके लागू होने के बाद अब उपभोक्ताओं को पानी के बिल से जुड़ी जानकारी या भुगतान सेवाओं के

जयपुरवासियों के लिए राहत!

पानी के बिल के लिए नहीं लगानी होगी लाइन

क्यूआर कोड से मोबाइल पर मिलेगा 10 महीने का रिकॉर्ड

- लंबी लाइनों से मिलेगा छुटकारा
- QR कोड स्कैन करें
- अपने मोबाइल पर पाएं 10 महीने का बिल रिकॉर्ड
- समय की बचत, सुविधा हर पल साथ

डिजिटल सुविधा अपनाएं, पानी बचाएं, समय बचाएं

जयपुर जलदाय विभाग

पानी का बिल रिकॉर्ड (10 महीने का रिकॉर्ड)

QR कोड स्कैन करें

बिल विवरण (पिछले 10 महीने)	रकम
जुलाई 2025	₹450
जून 2025	₹430
मई 2025	₹430
अप्रैल 2025	₹430

कुल 10 महीने का रिकॉर्ड आपका

सुविधा भी, परवरशिता भी

लिए जलदाय कार्यालयों के चक्कर नहीं काटने पड़ेंगे। यह नई पारदर्शी और डिजिटल व्यवस्था अगले महीने 10 अगस्त से जारी होने वाले पानी के बिलों पर लागू हो जाएगी, जिससे शहर के लगभग 6 लाख पंजीकृत जल उपभोक्ताओं को सीधा लाभ पहुंचेगा।

क्यूआर कोड स्कैन करते ही मोबाइल पर मिलेगी पूरी हिस्ट्री

नए बिलिंग सिस्टम को तैयार करने वाली फर्म के प्रतिनिधि राकेश शर्मा के

अनुसार, अब हर बिल पर उपभोक्ता वार एक विशिष्ट क्यूआर कोड अंकित रहेगा। जब उपभोक्ता पहली बार अपने मोबाइल से बिल पर दिए गए क्यूआर कोड को स्कैन करेंगे, तो उनका मोबाइल नंबर सिस्टम में पंजीकृत हो जाएगा। नंबर रजिस्टर होने के बाद, उपभोक्ता जब भी दोबारा क्यूआर कोड स्कैन करेंगे, तो उनके मोबाइल स्क्रीन पर पिछले 10 महीने की पूरी बिलिंग हिस्ट्री आ जाएगी।

मोबाइल पर मिलेंगे हर महीने के अलर्ट

इस नई डिजिटल पहल के जरिए उपभोक्ता अपने मोबाइल पर आसानी से जल उपभोग और बकाया राशि, वर्तमान बिल की राशि और भुगतान की अंतिम तिथि

तथा पुराने भुगतान का पूरा विवरण देख सकेंगे। इसके अलावा, मोबाइल नंबर पंजीकृत होते ही उपभोक्ताओं को हर महीने बिल बनने की राशि और अंतिम तिथि का अलर्ट मैसेज भी स्क्र के जरिए प्राप्त होगा। इससे बिल संबंधी जानकारी पाना और समय पर भुगतान की निगरानी करना बेहद आसान हो जाएगा।

जलदाय कार्यालय जाकर मोबाइल नंबर पंजीकरण कराने में उपभोक्ताओं को पेशानी होने का फीडबैक मिला था। अब नया सिस्टम लाया जा रहा है। घर बैठे क्यूआर कोड स्कैन कर उपभोक्ता बिलिंग सेवाओं का लाभ ले सकेंगे।

अजय सिंह रावैड़, अतिरिक्त मुख्य अभियंता, जयपुर

बहुत सारे फैसले ऐसे हैं, जिनके लिए विशेषज्ञ की राय जरूरी है

कौशिक बसु (विश्वविख्यात अर्थशास्त्री)

भारत सरकार में मुख्य आर्थिक सलाहकार और विश्व बैंक में चीफ इकोनॉमिस्ट के रूप में वर्षों तक काम करते हुए मुझे यह समझ में आया कि अर्थशास्त्र कितना विचित्र विषय है। अर्थशास्त्र का औपचारिक प्रशिक्षण न रखने वाले नेता भी कभी-कभी ऐसे नीतिगत निर्णय ले लेते हैं, जो पेशेवर विशेषज्ञों के निर्णयों जितने ही उचित होते हैं। लेकिन इसके कुछ आयाम ऐसे भी हैं, जो इंजीनियरिंग जितने सटीक होते हैं।



इन क्षेत्रों में यदि बिना विशेषज्ञों की सहायता के नीतिगत निर्णय लें, तो यह वैसा ही होता है, जैसे किसी अकाउंटेंट से किसी पुल का डिजाइन तैयार करने को कहा जाए। कई गंभीर भूलें तब होती हैं, जब राजनीतिक नेतृत्व ऐसे क्षेत्रों में कदम रखता है, जहां विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है। नोटबंदी इसका उल्लेखनीय उदाहरण था। टैरिफों को बार्गेनिंग के उपकरण के रूप

में उपयोग करने की ट्रम्प की शैली इसका एक और उदाहरण है। यदि टैरिफ कम हों, तो कंपनियां क्रॉस-बॉर्डर ट्रेड पर आधारित बिजनेस में निवेश करेंगी। यदि टैरिफ अधिक हों, तो वे घरेलू उत्पादन में निवेश करेंगी। लेकिन जब टैरिफों की बार-बार घोषणा की जाए, उन्हें स्थगित किया जाए, उन पर दोबारा बातचीत की जाए, उनमें छूट दी जाए और दूसरे देशों से रियायतें हासिल करने या उन्हें दंडित करने के राजनीतिक हथियार के रूप में उन्हें आगे बढ़ाया जाए, तो कंपनियां दोनों में से किसी भी क्षेत्र में निवेश करने से हिचकने लगती हैं। इस नीतिगत अनिश्चितता की कीमत अमेरिका ने अधिक महंगाई और धीमी आर्थिक वृद्धि के रूप में चुकाई है।

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के तहत भारत सरकार में मुख्य आर्थिक सलाहकार के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान मैंने नीलामी-प्रक्रिया के महत्व को भी देखा। 2010 में, सरकार 3जी स्पेक्ट्रम के लाइसेंस बेचने की तैयारी कर रही थी, जिसके बारे में अधिकारियों का अनुमान था कि इससे 7 अरब डॉलर मिलेंगे।

मैंने सिफारिश की कि पारम्परिक प्रशासनिक प्रक्रिया पर निर्भर रहने के बजाय सरकार एक पेशेवर रूप से डिजाइन की गई नीलामी को लाइसेंसों का बाजार-मूल्य तय करने दे। मनमोहन सिंह स्वयं एक

प्रशिक्षण-प्राप्त अर्थशास्त्री थे, वे इस बात से सहमत हो गए। नीलामी से अंततः लगभग 15 अरब डॉलर जुटाए गए। यदि स्पेक्ट्रम को पारम्परिक प्रक्रिया के जरिए आवंटित किया गया होता, तो सरकार लगभग 8 अरब डॉलर गंवा देती और यह पैसा निजी फर्मों के पास चला जाता। भ्रष्टाचार-रोधी नीति भी ऐसा क्षेत्र है, जहां आर्थिक विशेषज्ञता अपरिहार्य है। भ्रष्टाचार लंबे समय से भारत के लिए भी एक गंभीर समस्या रहा है। अयोध्या के राम मंदिर में चढ़ावे के कथित गबन के आरोप यह दर्शाते हैं कि देश की सबसे प्रतिष्ठित संस्थाएं भी इससे अछूती नहीं हैं।

स्वाभाविक है कि भारतीय चाहते हैं कि भ्रष्ट अधिकारियों को न्याय के कठघरे में लाया जाए, लेकिन भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए केवल नैतिक उपदेश या कठोर दंड पर्याप्त नहीं हैं। इसके लिए प्रोत्साहनों, बाजारों और संस्थागत ढांचे की समझ भी जरूरी है।

1950 के दशक की शुरुआत में ताइवान का अनुभव इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। अन्य देशों के व्यापारियों की तरह ताइवान के कारोबारी भी कर चोरी के लिए अकसर अपनी बिक्री का पूरा रिकॉर्ड दर्ज नहीं करते थे। इससे निपटने के लिए ताइवान ने 1951 में यूनिफॉर्म इनवॉइस लॉटरी शुरू की।

चिंग राजवंश के समय से प्रचलित आधिकारिक

रिकॉर्ड की परम्परा से प्रेरणा लेते हुए प्रत्येक आधिकारिक ग्राहक-रसीद को नियमित नकद पुरस्कार वाली लॉटरी का टिकट बना दिया गया। इस व्यवस्था ने लाखों लोगों को रसीद मांगने का व्यक्तिगत प्रोत्साहन दिया, जिससे वे कर-प्रवर्तन की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बन गए।

इसके परिणाम उल्लेखनीय रहे। कारोबारी केवल रसीद जारी न करके कर चोरी नहीं कर सकते थे, क्योंकि अब ग्राहकों के पास रसीद लेने का मजबूत प्रोत्साहन था। एक वर्ष के भीतर ही ताइवान में कर राजस्व 75% बढ़ गया।

जैसे-जैसे राजनीति उन क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने लगी है, जहां तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है, वैसे-वैसे आर्थिक भूलों का जोखिम भी बढ़ता गया है। यदि अतीत की भूलों से कोई सीख मिलती है, तो वो यह है कि राजनीतिक इंस्टिट्यूट्स कठोर आर्थिक विश्लेषण का विकल्प नहीं हो सकतीं।

जैसे-जैसे राजनीति उन क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने लगी है, जहां तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता है, वैसे-वैसे आर्थिक भूलों का जोखिम भी बढ़ता जाता है। राजनीतिक इंस्टिट्यूट्स कठोर आर्थिक विश्लेषण का विकल्प नहीं हो सकतीं। (अप्रोजेक्ट सिंडिकेट)

पवन के. वर्मा

2014 के लोकसभा चुनाव में नीतीश कुमार की जदयू को 40 में से 2 सीटें मिली थीं। जब उन्होंने इस पराजय की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा देने का फैसला किया, उस समय मैं उनके साथ था।

यह खबर फैलते ही पार्टी के नेता और विधायक उनके आवास पर पहुंच गए और उनसे निर्णय वापस लेने का आग्रह करने लगे। विधानसभा में जदयू के पास तब भी स्पष्ट बहुमत था और इस्तीफा देने की कोई संवैधानिक या राजनीतिक मजबूरी नहीं थी। लेकिन नीतीश अपने फैसले पर अडिग रहे। इसके बाद जीतन राम मांझी अप्रत्याशित रूप से मुख्यमंत्री बने।

हमारे लोकतांत्रिक इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब नेताओं ने माना कि

सत्ता और जवाबदेही एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकते, इसलिए पद छोड़ना ही उचित है। इसका सबसे चर्चित उदाहरण लाल बहादुर शास्त्री हैं।

1956 में महबूबनगर रेल दुर्घटना के बाद उन्होंने रेलमंत्री के पद से इस्तीफे की पेशकश की थी, लेकिन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें ऐसा न करने के लिए राजी कर लिया। लेकिन उसी वर्ष बाद में अरियालुर रेल दुर्घटना के बाद शास्त्री ने इस्तीफा दे दिया।

दुर्घटना के लिए वे व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार नहीं थे, फिर भी उनका मानना था कि मंत्रालय के प्रमुख होने के नाते इस

सत्ता और जवाबदेही एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकते

विफलता की नैतिक जिम्मेदारी उन्हें ही लेनी चाहिए। उनका त्यागपत्र राजनीतिक शुचिता के सबसे महत्वपूर्ण उदाहरणों में गिना जाता है।

1958 में एलआईसी से जुड़े मुंद्रा कांड के बाद टी.टी. कृष्णामाचारी ने वित्त मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। प्रश्न यह नहीं था कि उन्होंने व्यक्तिगत रूप से कोई अनुचित लाभ उठाया था। असली सवाल यह था कि क्या कोई मंत्री अपने मंत्रालय के

कामकाज की जिम्मेदारी से स्वयं को अलग कर सकता है?

1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद वी.के. कृष्ण मेनन ने रक्षा मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया था। एक बार फिर, यह इस स्वीकारोक्ति का प्रतीक था कि किसी महत्वपूर्ण मंत्रालय के शीर्ष पर बैठा व्यक्ति संस्थागत विफलता के परिणामों से अनिश्चित काल तक स्वयं को अलग नहीं रख सकता।

1992 में एक विमान के दुर्घटनाग्रस्त होने के बाद माधवराव सिंधिया ने नागरिक उड्डयन मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया था, जबकि इस हादसे में किसी की जान नहीं गई थी। 1999 में गैसल रेल दुर्घटना के बाद नीतीश कुमार ने रेल मंत्री पद छोड़ दिया था। इसी प्रकार, 2000 में पंजाब में हुई हावड़ा-अमृतसर रेल दुर्घटना के बाद ममता बनर्जी ने भी इस्तीफा दे दिया था। हालांकि प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने उनका इस्तीफा स्वीकार नहीं किया। 26/11 के बाद गृह मंत्री शिवराज पाटिल और महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री विलासराव देशमुख ने भी नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए अपने-अपने पद छोड़ दिए थे।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में पद जितना ऊंचा होता है, उसके साथ जुड़ी जवाबदेही भी उतनी ही अधिक होती है। निस्संदेह, प्रधानमंत्री को संवैधानिक रूप से यह अधिकार है कि वे अपने मंत्रिमंडल में किसे रखना चाहते हैं, इसका निर्णय स्वयं करें।

किसी मंत्री का इस्तीफा ऐसा हथियार नहीं बनना चाहिए, जिसे विपक्ष हर प्रशासनिक विफलता के बाद लहराए। न ही केवल

इसलिए किसी मंत्री की बलि दी जानी चाहिए कि किसी राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी ने उसकी मांग की है। यदि हर आरोप स्वतः ही पद से हटाने का आधार बन जाए, तो सरकार चलाना ही संभव नहीं रह जाएगा।

इसका दूसरा पहलू भी उतना ही चिंताजनक है- यह धारणा कि

जब तक कोई अदालत, जांच एजेंसी या संसदीय समिति किसी मंत्री की व्यक्तिगत जवाबदेही स्थापित न कर दे, तब तक उसे पद पर बने रहना चाहिए। इससे मंत्रिस्तरीय जवाबदेही केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा बनकर रह जाती है।

लोकतंत्र इससे कहीं अधिक की अपेक्षा करता है। मंत्री कोई नौकरशाह नहीं होता। नौकरशाह प्रशासन चलाते हैं; मंत्री नेतृत्व करते हैं और राजनीतिक जिम्मेदारी स्वीकार करते हैं। यदि कोई व्यवस्था विफल हो जाए, तो केवल कुछ अधिकारियों को निर्लंबित कर देना और जांच समिति गठित करने की घोषणा कर देना पर्याप्त नहीं है। मंत्री को स्वयं से भी पूछना चाहिए कि क्या उसके पद पर रहने से व्यवस्था के प्रति जनता का विश्वास मजबूत होगा या कमजोर पड़ेगा।

धर्मेन्द्र प्रधान ने नीट पेपर-लीक मामले में अंततः इस्तीफा देकर सही कदम उठाया है। लेकिन उन्होंने इतनी देर क्यों की? अपनी और सरकार, दोनों की छवि के लिए उन्हें यह फैसला बहुत पहले कर लेना चाहिए था। सार्वजनिक पद जवाबदेही से बचने की ढाल नहीं होते; बल्कि जवाबदेही का अस्तित्व ही सार्वजनिक पदों के कारण है।

मंत्री नौकरशाह नहीं होता। नौकरशाह प्रशासन चलाते हैं; मंत्री नेतृत्व करते हैं और राजनीतिक जिम्मेदारी स्वीकारते हैं। व्यवस्था विफल हो, तो कुछ अधिकारियों को निर्लंबित करना और जांच समिति गठित करना काफी नहीं होता।



कॉकरोच: एक शब्द का बल

शंकर शरण

देखें तो एक शब्द 'कॉकरोच' ने निर्वर्तमान शिक्षा मंत्री के पद की बलि ले ली। चाहे इससे कोई संबंध नहीं था। पर सामाजिक क्षेत्र में प्रयोग होते ही यह शब्द तीखा बन गया। इस शब्द का जन्म हिकारत और घमंड की भावना से हुआ था। इसलिए 'पार्टी' रूप में शरीर पाकर एक कोरे शब्द ने शक्तिरूप धारण कर लिया। वह बलि माँगने लगा, और परिस्थितिवश उसके सामने शिक्षा मंत्री पड़ गए।

फिर उसने कुछ ही दिनों में उन्हें अपदस्थ कर दिया। उस सरकार को हिला दिया, जिसे बारह साल से कोई दल या नेता झुकाने में विफल सिद्ध रहा था। पर चार दिन पहले बनी कॉकरोच जनता पार्टी, जो कहीं औपचारिक दर्ज भी नहीं, ने सीधी झड़प में उसे झुकाया। यदि 'कॉकरोच' शब्द उस सामाजिक अर्थ में उच्चरित होकर अवतरित न हुआ होता, तो क्या भारतीय राजनीति में वह होता जो गत सप्ताह हुआ?

कॉकरोच पार्टी बनाने से पहले अभिजीत दीपके एक साधारण छात्र था। वह वही बना रहता, यदि सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस ने 15 मई 2026 को इस शब्द का वैसा प्रयोग न किया होता। जिस का समाचार हजारों मील दूर दीपके ने सुनकर अपना क्षोभ व्यक्त करने के लिए उस नाम से एक व्यंग्यात्मक पार्टी बनाई...महज शाब्दिक!

जैसे कॉकरोच नाम भर था, वैसे ही कॉकरोच पार्टी भी! एक एक्स (ट्विटर) मंच, जहां उसने अपने जैसे 'कॉकरोचों' को इकट्ठा होने की अपील की। ऐसी गतिविधि सोशल मीडिया पर हजारों लोग करते रहे हैं। दुनिया भर में बड़े-बड़े सितारे, नेता, लेखक, पत्रकार ट्विटर पर कुछ न कुछ लिखते बोलते हैं और उन के लाखों फॉलोअर उसे लाइक करते हैं। लेकिन उससे कुछ नहीं होता।

इस सामाजिक शब्द, 'कॉकरोच' का जिस रूप में जन्म हुआ उसमें तीखा अर्थ भरा हुआ था। चीफ जस्टिस ने 15 मई को अपनी अदालत में किंचित वितृष्णा से कहा, कुछ युवक कॉकरोच की तरह होते हैं, जिन्हें कोई रोजगार नहीं मिलता और किसी भी पेशे में उनके लिए कोई स्थान नहीं होता। उनमें से कुछ मीडिया में चले जाते हैं, कुछ आरटीआई कार्यकर्ता बन जाते हैं, और फिर वे हर किसी पर हमला करना शुरू कर देते हैं। उनकी बात में सत्य का अंश था। कुछ लोग किसी बड़े व्यक्ति या संस्था को निशाना बनाकर सफल होने के लिए तिकड़म करते ही रहते हैं। सुप्रीम कोर्ट में पीआईएल दायर करना इसका एक साधन रहा है।

परन्तु जिस तरह चीफ जस्टिस ने हल्के से वैसे लोगों को 'बेरोजगार युवक' कह दिया, वह बात एक तिक युवा समूह पर जाकर बैठ गई। यानी, उन भरे बैठे बेरोजगार युवकों पर जो कई तरह से योग्य होते हुए भी शासकों के भ्रष्टाचार, जातिवाद, आरक्षण, दलबंदी, स्थान की कमी, कुशिक्षा, आदि कारणों से बेकारी, और फलतः उपेक्षा व कष्ट झेलते हैं।

सो चीफ जस्टिस के उस शब्द की बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया हुई। दूसरे दिन 16 मई को, दीपके ने उस शब्द से 'कॉकरोच जनता पार्टी' नाम से एक ट्विटर हैंडल बनाया। एक ही दिन में उसके 29000 फॉलोअर्स बन गए। चार दिन में उन की संख्या दो लाख हो गई। पांचवे दिन सत्ताधारियों के दबाव से ट्विटर ने भारत में उस हैंडल को हटा दिया। छठे दिन 22 मई को दीपके ने 'कॉकरोच इज बैक' नाम से नया हैंडल बनाकर 'कॉकरोचों' द्वारा शिक्षा मंत्री का इस्तीफा मांगने का अभियान आरंभ किया, क्योंकि कई परीक्षाओं के पर्व लीक होने से देश भर के छात्रों को बार-बार परेशानी हो रही थी।

इस अनायास आह्वान ने देश के युवाओं के क्षोभ को रास्ता और स्वर दे दिया। जो सत्ताधारियों की लापरवाही और गैर-जवाबदेही से दुःखी थे। उस दुःख को 'कॉकरोच' बिल्ले के क्षोभ ने नैतिक धार दे दी।

एक तो, उन्हें देश के सत्ताधारी वितृष्णा से देखते हैं — आखिर न्यायाधीश सरकार का तीसरा अंग हैं। दूसरे, पर्व लीक एवं शैक्षिक तंत्र की लापरवाहियों के लिए कोई जिम्मेदार नहीं! प्रधानमंत्री आए-दिन कुछ कुछ बोलते रहते हैं, पर लाखों छात्रों के साथ हो रहे अन्याय पर चुप बने रहे हैं।

फलतः यह दोहरा आक्रोश जुड़कर दीपके द्वारा 22 मई को एक ठोस मांग में परिणत हुआ। फिर उसने 6 जून को जंतर-मंतर पर शिक्षा मंत्री के इस्तीफे के लिए धरना शुरू किया। उसमें जाने-माने सामाजिक कार्यकर्ता सोनम वांगचुक भी आकर जुड़ गए। फिर उन के समर्थन में बड़े लोग बयान देने लगे। इस प्रकार, शिक्षा तंत्र में लापरवाही की जिम्मेदारी के लिए मंत्री के इस्तीफे की मांग एक भौतिक शक्ति बन गई। उसने अन्य शक्तियों को भी आकर्षित किया।

इस तरह 15 मई को 'कॉकरोच' शब्द के जन्म लेने, अगले दिन उस की प्रतिक्रिया में ट्विटर पर 'कॉकरोच पार्टी' बनने, वहीं 22 मई को 'कॉकरोच' द्वारा शिक्षा मंत्री के इस्तीफे की मांग का आरंभ, फिर 6 जून से जंतर-मंतर धरना, और अंततः 25 जुलाई को शिक्षा मंत्री का इस्तीफा — यह सब मूलतः उस

एक शब्द के उच्चारण से बनी गति है।

चीफ जस्टिस का एक शब्द अनजाने में पूरी सरकार पर भारी पड़ गया। यदि वह शब्द उस रूप में उच्चरित और अवतरित न हुआ होता, तो गत दो में घटी हुई घटनाएं शायद ही घटी होतीं। यह संयोग भी था। परन्तु एक शब्द की शक्ति, कभी-कभी कैसा रूप दिखा सकती है! यह शब्द उसका प्रमाण है।

इससे पहले भारतीय राजनीति में एक शब्द का प्रभाव छब्बीस वर्ष पहले देखा गया था। जब भाजपा के उभरते नेता गोविंदाचार्य ने 1997 में अपने सर्वोच्च नेता वाजपेयी के लिए 'मुखौटा' शब्द का प्रयोग किया था। यद्यपि उन्होंने कहा कि उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा था। पर स्वयं भाजपा के बड़ों द्वारा उसे सत्य मानने से बात जमी रह गई। तब के हालात में वह शब्द सही लग रहा था। पर जल्द ही गोविंदाचार्य

को भुगतना पड़ा। उनका राजनीतिक सफर ही खत्म हो गया। पहले उन्हें किनारे किया गया। फिर पार्टी में उनकी कोई जगह न बन सकी। वरना, वे एक स्टार नेता थे। उनका व्यक्तित्व, वक्तृता, जाति, पार्टी, आयु, सब कुछ संभावनाओं से भरा था। पर उस एक शब्द के प्रयोग ने उन पर ग्रहण लगा दिया।

सो, कभी-कभी एक शब्द भी गजब ढाता है! यह भाषा की रहस्यमय शक्ति है। यद्यपि वह अपने आप में दुर्बल है। जो चाहे इसका दुरुपयोग कर लेता है! इसीलिए कवि अज्ञेय ने भाषा को 'सभी कला माध्यमों

में सबसे कमजोर' बताया था। जिसे आसानी से तोड़ा-मरोड़ा, भ्रष्ट किया जा सकता है! किसी साधारण या घटिया वस्तु, पर्चा, भाषण, नेता, आदि झूठ को भी 'सर्वोत्तम', 'शानदार', 'महान', 'ऋषि', आदि कह कर धड़ले से परोसा जाता है। सत्ता, धन, संगठन, प्रचार जैसे माध्यमों में होने वाली लफ्फाजी के रूप में भाषा का दुरुपयोग होता है। तब वह लोगों को प्रभावित कर सकती है। वैसी स्थिति में, ठगे जाने वाले लोगों का तो क्या, भाषा अपना भी बचाव नहीं कर पाती! इस रूप में, संगीत, चित्र, आदि कला-माध्यमों की तुलना में भाषा कमजोर है। इसका सर्वाधिक दुरुपयोग होता है। दूसरे कला माध्यमों का इतना दुरुपयोग नहीं हो सकता। फिर भी, यही भाषा कभी-कभी अपने प्रयोग करने वाले को भारी चकमा भी देती है। इसलिए साहित्य ही नहीं, राजनीति में भी भाषा के प्रयोग के प्रति सावधानी रखना आवश्यक है। अपने सर्वोत्तम उदात्त रूप में भाषा लोगों को सहारा भी देती है।? इसका उदाहरण द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने दिया था। उनके शब्दों ने हिटलर के सामने पस्त हो रहे इंग्लैंड को बल दिया। इस हद तक कि कई यूरोपीय देशों को टिके रहकर लड़ने का हौसला मिला। चर्चिल को इस ऐतिहासिक भूमिका को बाद में अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी ने कवित्वमय रूप में रखा था- उन के शब्दों की प्रज्वलित शक्ति ने अपने देशवासियों के साहस को आलोकित किया। चर्चिल ने अंग्रेजी भाषा को बुलाया और उसे युद्धभूमि में उतार दिया। आज कम लोग याद करते हैं कि चर्चिल को 1953 में साहित्य का नोबल पुरस्कार मिला था — इतिहास और साहित्यिक लेखन, तथा उदात्त मानवीय मूल्यों की रक्षा में अद्भुत वक्तृता के लिए।

अर्थात्, वही भाषा किसी सच्चे लेखक अथवा समाज के हाथों विशिष्ट शक्ति हासिल कर लेती है। तब उस का लेखन समानांतर सरकार जैसी सत्ता बन जाता है। बड़ी-बड़ी तानाशाही उससे डरती हैं। वैसे लेखक को प्रतिबंधित करती है, देश-निकाला देती है। जैसे सोल्झेनित्सिन, या अभी तस्लीमा नसरिन। कला के किसी अन्य माध्यम में इतना शक्ति-संचय और प्रभाव की संभावना नहीं है। यह शब्द और भाषा की दोहरी स्थिति है। एक ओर सब से दुर्बल, दूसरी ओर बड़ी प्रभावशाली। हाल के भारतीय घटनाक्रम ने यह भी दिखाया है।



भारत पर अमेरिका के नए टैरिफ का दबाव

व्यापार समझौता हो सकता है गले का फंद

विशेष रिपोर्ट

अमेरिका ने भारत और कई अन्य देशों से आयात होने वाली उन वस्तुओं पर 10 फीसदी टैरिफ लगाया है, जिनके बारे में माना जाता है कि वे जबरन श्रम का इस्तेमाल करके तैयार किये गये हैं।

यह कदम और कुछ नहीं, स्थायी टैरिफ को बहाल करने और, एक बार फिर, अमेरिका के साथ व्यापार समझौते के फायदों को उजागर करने की कोशिश भर है। अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के फरवरी 2026 के निर्णय से विभिन्न देशों के साथ

व्यापार समझौता करने की अमेरिकी कोशिशों को तगड़ा झटका लगा। उच्च रिसिप्रोकल (जैसे-को-तैसा) टैरिफ की मुख्य धमकी अदालती आदेश के साथ खत्म हो गयी। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने समाधान के तौर पर सभी देशों पर अस्थायी 10 फीसदी टैरिफ लगाया, जो दो कमजोरियों से ग्रस्त था।

इसकी मियाद 150 दिनों की थी, और इसे सभी देशों पर समान दर से लगाया गया था, चाहे उनका अमेरिका के साथ व्यापार समझौता हो या न हो। उस टैरिफ

की मियाद अब खत्म हो चुकी है। पिछले हफ्ते घोषित धारा 301 का 'जबरन श्रम' टैरिफ ज्यादा स्थायी किस्म का है, और इसमें अमेरिका के साथ व्यापार समझौते वाले देशों के लिए फायदे निकाले गए हैं। उदाहरण के लिए, भारत से होने वाले अमेरिकी आयातों पर उस बेस टैरिफ के अतिरिक्त 10 फीसदी टैरिफ लगेगा जो अमेरिका सभी से वसूलता है, लेकिन यूरोपीय संघ और ताइवान को कुल 10 फीसदी का टैरिफ देना होगा। ऐसे ही फायदे जापान, दक्षिण कोरिया और स्विट्जरलैंड को भी प्रदान किये गये हैं - इन सभी देशों का अमेरिका के साथ व्यापार समझौता औपचारिक रूप लेने के अलग-अलग

चरणों में हैं।

अगर जबरन श्रम को रोकना प्राथमिक फोकस था, तो सभी दोषियों पर समान रूप से टैरिफ लगाया जाना चाहिए था, बिना यह देखे कि उस देश के साथ व्यापार समझौता किस स्थिति में है। टैरिफ में भी इतनी सारी उत्पाद-वार छूट और देश-वार कोटा नहीं होता, जितना कि अंतिम संस्करण में मौजूद है। यह भी सवाल है कि क्या अमेरिका को दूसरे देशों को तीसरे पक्ष के साथ उनके व्यापार के लिए सजा देनी चाहिए। भारत जबरन श्रम का इस्तेमाल करने का आरोपी नहीं रहा है, फिर भी टैरिफ का सामना कर रहा है क्योंकि दूसरे देश आरोपी रहे हैं।



डिजिटल दुनिया में इंसानियत का पासवर्ड: 'प्रीतम एंड पेद्रो'

फिल्म संवाददाता द्वारा

जब ओटीटी पर अपराध आधारित कहानियां अक्सर हिंसा, अंधेरे और सनसनी का सहारा लेती हैं, तब 'प्रीतम एंड पेद्रो' एक अलग रास्ता चुनती है। यह विश्वास करती है कि गंभीर बात भी मुस्कुराते हुए कही जा सकती है। यही इसकी सबसे बड़ी सफलता है। इस सीरीज को देखते हुए बार-बार लगा कि डिजिटल युग में हमें केवल साइबर सुरक्षा की नहीं, भावनात्मक सुरक्षा की भी जरूरत है।

सिने-सोहबत

एक समय था जब घरों के दरवाजों पर मजबूत कुंडियां लगाई जाती थीं। रात को सोने से पहले घर का सबसे बुजुर्ग व्यक्ति उठ कर एक बार ताला ज़रूर देखता था। चोरी का डर घर के बाहर था। चोर दिखाई देता था और उससे बचने के उपाय भी दिखाई देते थे।

आज समय बदल चुका है।

अब चोर दरवाजा नहीं तोड़ता। वह हमारी जेब में रखे मोबाइल फोन के रास्ते हमारी जिंदगी में दाखिल होता है। हमारी तस्वीरें, हमारी पहचान, हमारे बैंक खाते, हमारी निजी बातचीत, सब कुछ अब डिजिटल है। जितनी तेजी से तकनीक ने हमारी जिंदगी आसान की है, उतनी ही तेजी से उसने हमें असुरक्षित भी बनाया है। लेकिन इस पूरी डिजिटल हलचल के बीच एक प्रश्न कहीं छूट जाता है कि क्या केवल तकनीक बदली है, या इंसान भी?

यही वह सवाल है जहां राजकुमार हिरानी फिल्मों की छह एपिसोड वाली वेब सीरीज 'प्रीतम एंड पेद्रो' अपनी अलग पहचान बनाती है। निर्देशक अविनाश अरुण साइबर अपराध की कहानी कहते हैं, लेकिन उनका लक्ष्य अपराध नहीं, इंसान है। यह सीरीज हमें डरा कर नहीं, मुस्कुरा कर सावधान करती है। शायद यही इसकी सबसे बड़ी खूबी है। आज के सिने-सोहबत में विमर्श का मुद्दा भी यही वेब शो है, 'प्रीतम एंड पेद्रो'।

कहानी गोवा पुलिस के अनुभवी अधिकारी पेद्रो (अरशद वारसी) और तकनीक-प्रेमी युवा प्रीतम (वीर हिरानी) की है। दोनों एक रहस्यमय हैकर (विक्रांत मैसी) तक पहुंचने की कोशिश करते हैं। रास्ते में साइबर बुलिंग, ऑनलाइन ब्लैकमेल, डिजिटल प्राइवैसी और डेटा चोरी जैसे अनेक प्रश्न सामने आते हैं।

यह केवल अपराधी को पकड़ने की कहानी नहीं है। असल कहानी दो पीढ़ियों के बीच संवाद की है। एक पीढ़ी अनुभव पर भरोसा करती है। दूसरी तकनीक पर। एक चेहरों को पढ़ती है। दूसरी स्क्रीन को। धीरे-धीरे दोनों समझते हैं कि अपराध चाहे कितना भी आधुनिक क्यों न हो जाए, उसे समझने के लिए अब भी इंसानी संवेदनाएं सबसे बड़ी तकनीक हैं। यही विचार इस सीरीज को साधारण पुलिस-थ्रिलर बनने से रोकता है।

राजकुमार हिरानी की फिल्मों को यदि ध्यान से देखें तो पाएंगे कि वे हमेशा व्यवस्था से पहले इंसान को रखते हैं। 'मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस.' में मेडिकल सिस्टम से पहले करुणा थी। 'लगे रहो मुन्नाभाई' में राजनीति से पहले गांधी का विचार था। 'श्री इंडियन्स' में परीक्षा में अंकों से पहले सीखने की खुशी थी। 'पीके' में धर्म से पहले इंसान था। 'प्रीतम एंड पेद्रो' उसी परंपरा का डिजिटल विस्तार है।

यह साइबर अपराध पर लेकर नहीं देती। यह

कहानी सुनाती है और कहानी के भीतर ही दर्शकों को सावधान भी कर देती है। किसी भी अच्छी स्क्रिप्ट की पहचान भी यही है।

राजकुमार हिरानी, अभिजात जोशी और सुयश त्रिवेदी की कहानी और स्क्रीनप्ले का सबसे बड़ा गुण यह है कि वे तकनीकी विषय को भी मानवीय बनाए रखते हैं। प्रांजल सक्सेना और शशांक कुंवर के संवाद सहज हैं। कहीं भी तकनीकी शब्दावली दर्शक को डराती नहीं। साइबर दुनिया आम दर्शक की समझ में आने लगती है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि सीरीज साइबर विशेषज्ञ अमित दुबे की चर्चित पुस्तकों 'हिडेन फाइल्स' और 'रिटर्न ऑफ़ द ट्रॉजन हॉर्स' से प्रेरित है। सो, घटनाओं में एक विश्वसनीयता बनी रहती है।



अभिनय की बात करें तो अरशद वारसी इस पूरी सीरीज की आत्मा हैं। वे अभिनय करते हुए अभिनय करते नहीं दिखते। तकनीक से परेशान एक पुराने खयालालत वाले पुलिस अधिकारी का उनका चित्रण कई बार हमारे अपने घर के किसी बड़े सदस्य की याद दिलाता है। उनके चेहरे पर झलकती उलझन, हास्य और संवेदना साथ-साथ चलते हैं। यही उनकी सबसे बड़ी ताकत है।

वीर हिरानी का अभिनय सुखद आश्चर्य है। पहली

ही परफॉर्मेंस में वे आत्मविश्वास से भरे दिखाई देते हैं। उनकी स्क्रीन प्रेजेंस भी काबिल-ए-गौर है। वे अपने किरदार को अनावश्यक नायकत्व नहीं देते हैं। उनकी सहजता ही उनकी सबसे बड़ी पूंजी है। अरशद वारसी के साथ उनकी केमिस्ट्री पूरी सीरीज को ऊर्जा देती है।

विक्रांत मैसी सीमित उपस्थिति में भी प्रभाव छोड़ते हैं। उनका रहस्यमय हैकर केवल अपराधी नहीं, बल्कि डिजिटल समय की एक जटिल मानसिकता का प्रतिनिधि बनकर सामने आता है। मोना सिंह, राजेश शर्मा, सत्यदीप मिश्रा, श्रुति मराठे और बोमन ईरानी भी अपनी-अपनी भूमिकाओं से कहानी को रंग देते हैं।

निर्देशक अविनाश अरुण का संयम विशेष रूप से प्रभावित करता है। वे गोवा को पोस्टकार्ड नहीं बनने

जाता है। गीत सुनते हुए अचानक एक विचार भीतर उतरता है कि चाहे जिंदगी हो या सिनेमा, बहुत सी मुश्किलें आसान हो सकती हैं यदि हम एक बात सीख लें— कभी किसी से माफी मांग लो, कभी किसी को माफ कर भी दो।

यह सुनने में जितना सरल लगता है, जीवन में उतना ही कठिन है। हम पासवर्ड बदलना सीख गए हैं, लेकिन अपने अहंकार को नहीं। हम मोबाइल सुरक्षित रखना जानते हैं, रिश्ते सुरक्षित रखना नहीं। हम दो स्तरीय सुरक्षा (टू फैक्टर ऑथेंटिकेशन) का महत्व समझते हैं, लेकिन संवाद और क्षमा जैसी दो मानवीय सुरक्षाओं को अक्सर भूल जाते हैं। यही वजह है कि 'माफी' केवल इस सीरीज का गीत नहीं, बल्कि फलसफा बन जाता है।

कई बार जीवन में सबसे कठिन काम किसी हैकर को पकड़ना नहीं होता, बल्कि अपने भीतर बैठे अहंकार को हराना होता है। यहीं 'प्रीतम एंड पेद्रो' मनोरंजन से आगे बढ़कर जीवन की बात करने लगती है।

हां, कुछ सीमाएं भी हैं। विक्रांत मैसी के किरदार को थोड़ा और विस्तार मिल सकता था। कुछ रहस्य अपेक्षाकृत जल्दी सुलझ जाते हैं। लेकिन ये छोटी-छोटी बातें उस समग्र अनुभव को कम नहीं करती जो सीरीज अपने दर्शकों को देती है।

आज जब ओटीटी पर अपराध आधारित कहानियां अक्सर हिंसा, अंधेरे और सनसनी का सहारा लेती हैं, तब 'प्रीतम एंड पेद्रो' एक अलग रास्ता चुनती है। यह विश्वास करती है कि गंभीर बात भी मुस्कुराते हुए कही जा सकती है। यही इसकी सबसे बड़ी सफलता है।

इस सीरीज को देखते हुए बार-बार लगा कि डिजिटल युग में हमें केवल साइबर सुरक्षा की नहीं, भावनात्मक सुरक्षा की भी जरूरत है। हमारी जिंदगी को सबसे ज्यादा नुकसान हमेशा कोई हैकर नहीं पहुंचाता। कई बार वह चोट हमारे अपने अहंकार, हमारी चुप्पियों और हमारी अधूरी माफियों से आती है। शायद इसलिए इस पूरी सीरीज का सबसे बड़ा संदेश साइबर अपराध नहीं, बल्कि जीवन है। अगर हम यह सीख जाएं, तो शायद केवल हमारी डिजिटल दुनिया ही नहीं, हमारी मानवीय दुनिया भी पहले से कहीं अधिक सुरक्षित हो जाएगी।

मेटा के इंडिया हेड अरुण श्रीनिवास पर एफआईआर प्रधानमंत्री के एआई वीडियो पर कार्यवाही

टेक संवाददाता की रिपोर्ट

फेसबुक और इंस्टाग्राम जैसे प्लेटफॉर्म पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के एआई जनरेटेड वीडियो सामने आने के बाद इन ऐप्स की पैरेंट कंपनी मेटा के इंडिया हेड अरुण श्रीनिवास पर भी एफआईआर दर्ज की गई है। इंडिया टुडे की एक रिपोर्ट में दावा किया गया है कि यह एफआईआर हैदराबाद साइबर क्राइम पुलिस ने दर्ज की है। कई सोशल मीडिया यूजर्स के खिलाफ भी एफआईआर दर्ज हुई है। खबर के अनुसार, पीएम मोदी के एआई-जनरेटेड वीडियो का सोर्स जांचा जा रहा है। यह पता लगाया जा रहा है कि कहीं इनसे



लोगों को गुमराह तो नहीं किया गया?

अरुण श्रीनिवास - पृष्ठिका

अरुण श्रीनिवास मौजूदा समय में मेटा के इंडिया हेड हैं। उन्हें पिछले साल जुलाई में यह जिम्मेदारी दी गई थी। अरुण ने साल 1993 में मद्रास यूनिवर्सिटी से साइंस में ग्रेजुएशन किया था। साल 1996 में उन्होंने आईआईएम कोलकाता से मार्केटिंग में पीजीडीएम पूरा किया। 2007 में वह अमेरिका की नॉर्थवेस्टर्न यूनिवर्सिटी गए और एक कोर्स पूरा किया। अरुण ने अपने करियर की शुरुआत 1996 में जूता बनाने वाली कंपनी रीबॉक से की थी। 2001 में वह यूनिलीवर चले गए और 15 साल तक वहीं काम किया। 2017 में यूनिलीवर छोड़ने के बाद वह बेंगलुरु स्थित कंपनी वेस्टब्रिज

कैपिटल पार्टनर्स में सलाहकार बने। 2019 में ओला जॉइन किया और 2020 में मेटा चले गए। तब से वह मेटा में ही काम कर रहे हैं।

केस क्यों?

इंडिया टुडे की रिपोर्ट के अनुसार एफआईआर दर्ज करने की वजह फेसबुक और इंस्टाग्राम पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के एआई जनरेटेड वीडियो का प्रसार है। यह जांच की जा रही है कि वीडियो कहां से शुरू हुए और सोशल मीडिया में कैसे फैले। वीडियो को रोकने में मेटा के सिस्टम ने क्या काम किया, यह भी पता लगाया जा रहा है।

मेटा की प्रतिक्रिया नहीं

मेटा ने इस मामले में अभी किसी भी तरह की प्रतिक्रिया नहीं दी है। कहा जा रहा है कि कंपनी का एक प्रतिनिधि, जांच करने वाली टीम के सामने पेश हुआ और कंपनी के नियमों की जानकारी दी।

गौरतलब है कि दिल्ली में हुए कॉकरोच जनता पार्टी के प्रदर्शन बड़े स्तर पर इंस्टाग्राम पर फैले। बड़ी संख्या में युवाओं ने रील अपलोड करके अपना विरोध जताया। प्रदर्शनकारी छात्रों से संवाद करने के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी इंस्टाग्राम को चुना था लेकिन प्रधानमंत्री के वीडियो को एआई की मदद से कांट-छांट करके गलत तरीके से पेश किया गया। मेटा इंडिया के हेड पर हुई एफआईआर कंपनी के अधिकारियों को भेजे जा रहे नोटिस से अलग मामला है। नोटिस भेजे जाने की मुख्य वजह उनकी एक फेसबुक पोस्ट को कुछ समय के लिए बैन करना है।

प्रधानमंत्री का वीडियो 23 जुलाई को इंस्टाग्राम पर अपलोड हुआ था और फेसबुक पर शेयर किया गया था। कहा जाता है कि वीडियो कई घंटों तक फेसबुक पर ब्लॉक रहा, जिसकी वजह मेटा ने तकनीकी समस्या बताई थी।

भारतीय रेल

बदल गया है लगेज बुक कराने का सिस्टम

वाणिज्यिक संवाददाता द्वारा

नई दिल्ली। आप ट्रेन में लंबी दूरी की यात्रा करते हैं। आप सफर में कुछ ज्यादा ही सामान ले जाते हैं। तो आपके लिए यह काम की खबर है। ट्रेन में जो कंफर्म टिकट (Confirm Ticket) पर ट्रेवल करते हैं, वैसे यात्री अब अपना अतिरिक्त लगेज ऑनलाइन बुक करा सकते हैं। इसके लिए रेलवे की पीएसयू आईआरसीटीसी के प्लेटफॉर्म पर विशेष सुविधा शुरू कर दी गई है। यह सुविधा 31 जुलाई से ही शुरू हुई है।

पार्सल ऑफिस नहीं जाना होगा

अभी तक जो व्यवस्था थी, उसमें यात्रियों को अतिरिक्त लगेज होने पर रेलवे स्टेशन पर स्थित पार्सल ऑफिस में जाना होता था। वहां फ्री लिमिट के ऊपर के लगेज को बुक कराना होता था। लेकिन आज से जो व्यवस्था शुरू हुई है, उसमें आईआरसीटीसी के प्लेटफॉर्म पर ही अतिरिक्त लगेज की बुकिंग हो सकती है। ऑनलाइन टिकट बुकिंग के दौरान, यात्री अपने फ्री बैगज अलाउंस से अधिक सामान का विवरण दे सकते हैं।

सेवा किनके लिए?

यह नई सेवा केवल उन्हीं यात्रियों के लिए उपलब्ध है जिनके पास कन्फर्म रिजर्व टिकट है। आप यदि ऑनलाइन लगेज बुक कराते हैं तो आपको बताना होगा कि यह आपका व्यक्तिगत सामान है। उसे आप लगेज वैन में नहीं बल्कि अपने रिजर्व डिब्बे में ही ले जाएंगे। यह सुविधा भारतीय रेलवे द्वारा निर्धारित वजन सीमा के भीतर ही काम करेगी। रेलवे बोर्ड ने सभी जोनल रेलवे को 31 जुलाई से इस सुविधा को लागू करने का

निर्देश दिया है।

कितना सामान ले जा सकते हैं?

भारतीय रेल की ट्रेन में फ्री में सामान ले जाने की सीमा यात्री की यात्रा श्रेणी के अनुसार अलग-अलग है। ऐसी फर्स्ट क्लास के यात्री बिना किसी शुल्क के 70 किलो तक सामान ले जा सकते हैं। इससे अधिक सामान होने पर लागू शुल्क का भुगतान कर अधिकतम 150 किलो तक सामान ले जा सकते हैं। फर्स्ट क्लास और एसी 2-टियर में यात्रा करने वाले यात्री 50 किलो तक बिना शुल्क के सामान ले सकते हैं। इस श्रेणी में शुल्क चुकाकर सामान ले जाने की अधिकतम सीमा 100 किलो है। स्लीपर क्लास के यात्री अपने साथ अधिकतम 40 किलो सामान निशुल्क ले जा सकते

हैं। इसके अतिरिक्त शुल्क देकर वे 80 किलो तक सामान ले जा सकते हैं। सेकंड क्लास के यात्री 35 किलो तक मुफ्त और शुल्क चुकाकर अधिकतम 70 किलो तक सामान ले जा सकते हैं। एसी 3-टियर, एसी 3 इकोनॉमी और एसी चेंबर कार में सामान ले जाने की अधिकतम सीमा 40 किलो है। इसमें अतिरिक्त शुल्क चुकाकर भी इससे ज्यादा सामान नहीं ले जा सकते हैं।

ऑनलाइन कैसे बुक करें?

इसके लिए आप भारतीय रेल के पार्सल पोर्टल पर जाएं और प्लेटफॉर्म पर रजिस्टर करें। लॉग इन करें, प्रस्थान और गंतव्य रेलवे स्टेशन एंटर करें। सिस्टम द्वारा सुझाए गए विकल्पों में से ट्रेन चुनें।

सामान का विवरण भरकर फॉरवर्डिंग नोट भरें।

सिस्टम द्वारा दिखाई गई अनुमानित भाड़े की राशि की जांच करें। ऑनलाइन फॉरवर्डिंग नोट सबमिट करें। ई-फॉरवर्डिंग नोट का प्रिंटआउट लें और प्रस्थान स्टेशन के पार्सल ऑफिस या गोदाम में सामान सौंप दें। रेलवे कर्मचारी सामान का वजन करेंगे और अंतिम भाड़े की राशि की गणना करेंगे। आवश्यक शुल्क का भुगतान करें और रेलवे रसीद प्राप्त करें।

लगेज ऑनलाइन टैक करें

लगेज की स्थिति ऑनलाइन चेक करने के लिए टैक एंड ट्रेस सुविधा का उपयोग करें। यात्रियों को एसएमएस सूचनाएं मिलेंगी जब उनके लगेज गंतव्य स्टेशन पर पहुंचेगा। लगेज लेने के लिए गंतव्य स्टेशन पर मूल रेलवे रसीद दिखाएं।

बैग का साइज

भारतीय रेल द्वारा ट्रेन में ले जाए जाने वाले बैग के आकार की सीमाएं निर्धारित की गई हैं। एसी 3-टियर, एसी 3 इकोनॉमी और एसी चेंबर कार में यात्रा करने वाले यात्री 55 सेमी × 45 सेमी × 22.5 सेमी तक के बैग ले जा सकते हैं। एसी फर्स्ट क्लास, एसी 2-टियर, स्लीपर क्लास और जनरल क्लास के लिए अधिकतम अनुमति प्राप्त बैग का आकार 100 सेमी × 60 सेमी × 25 सेमी है।

सामान के शुल्क और गणना

ट्रेन में यात्रा के दौरान निशुल्क वजन से अधिक सामान ले जाने वाले यात्री को सामान्य लगेज दर का 1.5 गुना शुल्क देना होगा। अधिकतम लगेज के लिए न्यूनतम शुल्क 30 रुपये है। शुल्क की गणना 10 किग्रा के स्लैब में की जाएगी, और गणना के लिए न्यूनतम दूरी 50 किलोमीटर मानी जाएगी।



भारत का शिक्षा क्षेत्र गंभीर संकट के दौर में

एक आकलन

भारतीय राजनीतिक नेतृत्व व्यापक विरोध-प्रदर्शनों का जवाब अक्सर नये कानूनों, फास्ट-ट्रैक अदालतों और जांच समितियों के जरिए देता है और शायद ही कभी मूल मुद्दों को हल करने का प्रयास करता है। कॉकरोच जनता पार्टी के आंदोलन का भी यही अंजाम हुआ है—तात्कालिक मांगें मान ली गयीं, नया कानून लाकर विरोध की लहर शांत की गयी, न्यायिक जांच का वादा किया गया और एक टास्क फोर्स गठित की गयी। यह एक बिगड़े हुए ढांचे पर आधारित संकट प्रबंधन है। राष्ट्रीय परीक्षा एजेंसी (एनटीए) की बात करें तो टास्क फोर्स से उम्मीद है कि वह के. राधाकृष्णन कमेटी के अक्टूबर 2024 के उस ब्लूप्रिंट को लागू करेगी, जिसका ज्यादातर हिस्सा 18 महीनों से रुका पड़ा है।

यानी, एक महानिदेशक और दो अतिरिक्त महानिदेशकों के तहत एक वैधानिक, यूपीएससी-जैसा एनटीए; साइबर सुरक्षा, साइकोमेट्रिक्स और फॉरेंसिक्स

तक फैले 10 अलग-अलग कार्य विभाग; एक हजार मानकीकृत परीक्षा केंद्र; आधार, चेहरा-पहचान तकनीक और लगातार नजरदारी को मिलाकर एक डिजी-एजाम बायोमेट्रिक फ्रेमवर्क। एनटीए ने विभिन्न

सृजन के लिए विधायी मंजूरी की जरूरत। नीट 2027 तक यह सब कर पाना काफी मुश्किल काम है।

अगर राधाकृष्णन पैनल की सिफारिशों को पूरी तरह लागू किया जाता, तो इसमें निरंतर, कंप्यूटर-अडैप्टिव टेस्टिंग की ओर जाना शामिल होता। जीआरई जैसे मानकीकृत टेस्ट अमेरिकी दाखिलों में अहम भूमिका निभाते हैं, लेकिन उनमें एक ही सटिंग में सबकुछ दांव पर नहीं होता। पैनल ने यह भी पाया कि राष्ट्रीय मेडिकल कमीशन और आईआईटी जैसी एजेंसियां परीक्षा चक्र में क्रियाहीन क्लाइंट की तरह मानी जाती हैं। लेकिन ये चीजें शायद टास्क फोर्स के दायरे से बाहर हों क्योंकि, जैसा कि इसके गठन से स्पष्ट है, इसमें जोर प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष अनुसंधान, इंटरलिजेंस, लोक प्रशासन और लॉजिस्टिक्स में क्षमता पर है।

इसमें अकेले अकादमिक व्यक्ति आईआईटी मद्रास के निदेशक हैं। हो सकता है कि ज्यादा कैरियर एजुकेटर्स और आकलन अनुसंधानकर्ताओं ने इस अधिक बड़े सवाल पर जोर दिया होता कि ये परीक्षाएं क्या मापने

के लिए बनी हैं, और क्या इन्हें अपने मौजूदा रूप में बने रहना चाहिए; सरकार इस सवाल का निपटारा हो चुका मानती प्रतीत हो रही है। इस सवाल पर ध्यान देने के बजाय, शिक्षा में संकट का समाधान उसे एक तकनीकी समस्या मानकर खोजा जा रहा है।

जेईई के आयोजन का ज्यादातर श्रेय आईआईटी फैकल्टी को जाता है, जो इसकी ईमानदारी को उस ब्रांड के लिए अत्यावश्यक मानते हैं जिससे वे खुद जुड़े हैं। एनटीए का पेपर बनाने वालों की कोई तुलनीय वफादारी नहीं है। जेईई एडवांस्ड में तकरीबन हर सवाल मूलभूत नियमों का एक नया एप्लीकेशन होता है। इसके उलट, नीट में एल्गोरिदम के आधार पर विभिन्न प्रश्न बैंकों से लिये गये सवालों को मिलाकर काम चलाया जाता है, जिसके चलते कोचिंग क्लासेज के साथ सांठ-गांठ, और गड़बड़ी की गुंजाइश बनी रहती है। शीर्ष एम्स संस्थानों में से एक को प्रत्येक साल नीट की पेपर-सेटिंग की जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है।

लेकिन सरकार का तरीका अकादमिक जगत के साथ ज्यादा जुड़ाव के मुताबिक नहीं है। जैसा कि प्रधानमंत्री ने बताया है, टास्क फोर्स के कामकाज का दायरा पूरी परीक्षा प्रणाली को कवर करता है, न कि सिर्फ नीट को। फिर भी, काफी उम्मीद है कि यह सीबीएसई की मार्किंग गड़बड़ी को भी एक तकनीकी समस्या के तौर पर ही देख सकती है। दोनों ही एक ही नाकामी की ओर इशारा करते हैं—ऐसे उच्च-गुणवत्ता वाले शैक्षणिक संस्थान न बना पाना जो स्वायत्त रूप से काम करने में सक्षम हों। टास्क फोर्स इस अक्षमता से निपटने के लिए नहीं बनाई गई है।



पदों पर नियुक्ति के लिए अधिसूचना जारी कर दी है, लेकिन ढांचगत चुनौतियां अब भी बरकरार हैं। जैसे, 6 से 12 महीने का भर्ती चक्र, वेतनमान प्राइवेट सेक्टर के समकक्ष लोगों की टक्कर का न होना, और कैडर

धर्म और आस्था: भगवान शिव और बरगद के वृक्ष का संबंध दिलचस्प और रहस्यों को उजागर करने वाला

चन्दा कुमारी

बरगद का वृक्ष भारतीय संस्कृति में सबसे पवित्र वृक्षों में से एक माना जाता है। इसकी विशाल शाखाएं, गहरी जड़ें और सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहने की क्षमता इसे स्थिरता, चेतना और अमरत्व का प्रतीक बनाती हैं। बरगद के पेड़ को व्रत वृक्ष या संन्यासी वृक्ष भी कहा जाता है। अमरता का प्रतीक होने के कारण वट सावित्री व्रत में महिलाएं इस वृक्ष की पूजा करती हैं।

मान्यता है कि यह वृक्ष पति को दीर्घायु देता है। यह मान्यता इसलिए प्रचलित है क्योंकि एक कथा के अनुसार माता पार्वती ने शिव जी से दीर्घायु और अखंड सौभाग्य का वर बरगद के नीचे प्राप्त किया। तभी से महिलाएं वट सावित्री व्रत में बरगद की पूजा करती हैं।

बरगद का संबंध केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि गहरे आध्यात्मिक अर्थों से जुड़ा हुआ है। बौद्ध धर्म में इसे बोधि वृक्ष कहा जाता है और ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। वहीं, हिन्दू धर्म में इसे भगवान् शिव से जोड़कर देखा जाता है। इस पेड़ को शिवजी से जोड़ने के पीछे क्या रहस्य है, चलिए जानते हैं भगवान् शिव और बरगद के पेड़ का संबंध।

बरगद को भगवान् शिव का प्रतीक कई कारणों से माना जाता है। जिस प्रकार शिव जी अनादि और अनंत हैं, ठीक उसी प्रकार बरगद भी अनेक पीढ़ियों तक जीवित रहता है और अमरता का प्रतीक बना हुआ है। भगवान् शिव को केवल संहारक नहीं, बल्कि परिवर्तन और पुनर्जन्म का देवता भी माना जाता है। वे सृष्टि के उस नियम का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहां हर अंत एक नई शुरुआत का संकेत होता है।

बरगद की भी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि



उसकी शाखाओं से नई जड़ें निकलती हैं, जो बाद में स्वयं तने का रूप ले लेती हैं और फिर वह विशाल पेड़ स्थिरता, अमरत्व और आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक बन जाता है। बरगद के पेड़ की इसी खासियत के कारण आज भी कई प्राचीन मंदिरों और तपोस्थलों में बरगद के वृक्ष के नीचे शिवलिंग की स्थापना मिलती है। यह इस बात का प्रतीक है कि प्रकृति और परमात्मा एक-दूसरे से अलग

नहीं हैं।

एक पौराणिक कथा के अनुसार, जब सती ने अपने पिता दक्ष के यज्ञ में आत्मदाह किया, तो शिव गहन वैराग्य में चले गए। उस समय उन्होंने बरगद के नीचे ही ध्यान लगाया था। तब से बरगद की विशाल जड़ें और शाखाएँ शिव के अनंत स्वरूप का प्रतीक बनीं। बरगद के पेड़ की छाया को ईश्वर की छाया माना जाने लगा। बरगद के वृक्ष के नीचे ऋषि बैठकर तपस्या करने लगे। ऋषि और संन्यासी, इस पेड़ के नीचे शिवलिंग बनाकर विराजमान करने लगे और पूजने लगे।

जिस प्रकार शिव जी एक तपस्वी, योगी और आत्माओं के स्वामी माने जाते हैं, ठीक उसी तरह बरगद के पेड़ की छाया भी तपस्वियों और योगियों के लिए पसंदीदा स्थान बन गया।

वे इसी पेड़ के नीचे अपने प्राण भी त्यागने लगे और मान्यताओं के अनुसार यह पेड़ पूर्वजों की आत्माओं का पेड़ कहा जाता है। कई श्मशान घाटों के पास बरगद का पेड़ लगाया जाता है, ताकि आत्माओं को एक स्थान मिल सके। यह पेड़ शिव जी के साथ-साथ यम का भी प्रतीक बन गया।

इस सृष्टि के कण-कण में बसते हैं भगवान : श्री श्री रविशंकर

ज्ञान प्राप्त कर लौटे श्वेतकेतु को देखते ही महर्षि केवल वहीं तक सीमित नहीं होता, जैसा वह बाहर उद्दालक समझ गए कि पुत्र में घमंड घर कर गया है। उन्होंने एक दिन श्वेतकेतु से पूछा, पुत्र, क्या तुमने कभी उस ज्ञान की खोज की है, जिसके द्वारा अनसुना सुना जा सकता है, अदृश्य देखा जा सकता है और अज्ञेय जाना जा सकता है? महर्षि ने तब मिट्टी, पानी और बीज के उदाहरण से समझाया कि किस तरह संपूर्ण सृष्टि एक ही तत्व से बनी है।

बीज का उदाहरण

महर्षि उद्दालक ने श्वेतकेतु को बरगद का एक फल देते हुए काटने को कहा। अंदर क्या निकला? श्वेतकेतु ने जवाब दिया, बीज। अब इस बीज को काटकर देखो कि इसके भीतर क्या है? इसमें तो कुछ भी नहीं है पिताजी, पुत्र की इस बात पर महर्षि ने मुस्कराते हुए कहा, जिसे तुम नहीं देख पा रहे, उसी से बरगद का एक बड़ा पेड़ बनेगा।

पानी में नमक

इसी तरह, एक गिलास पानी में नमक घोलकर उन्होंने बेटे से पूछा, नमक कहां है? नमक तो पानी में घुल गया, पर इसका स्वाद हर बूंद में है। श्वेतकेतु को असली ज्ञान मिल चुका था, कि जिस तरह नमक पानी में अदृश्य होकर भी हर जगह मौजूद है, उसी तरह संपूर्ण ब्रह्मांड में ब्रह्म व्याप्त है। वह हर कण में है, हर जीव में। वह मुझमें भी है, वह तुम में भी।

हर कण में ब्रह्म

महर्षि उद्दालक ने श्वेतकेतु को छांदोग्य उपनिषद का महावाक्य बताया, तत्त्वमसि - वह तुम ही हो। यह परम वाक्य कहता है कि ब्रह्म हर जीव और हर वस्तु में है। वही परम तत्व है। किसी का भी अस्तित्व



केवल वहीं तक सीमित नहीं होता, जैसा वह बाहर दिखता है। मूल तो वह ब्रह्म है, वह एतम, जो दिखता नहीं है, लेकिन हमेशा से वहीं है। जो नष्ट नहीं होता और अनंत काल से चक्र में चला आ रहा है।

पंचभूत सिद्धांत

भारतीय दर्शन और आयुर्वेद में पंचभूत का महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इसके अनुसार, संपूर्ण ब्रह्मांड पांच तत्वों से बना है - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। हर जीवित प्राणी इन्हीं पांच तत्वों से बना है। मौत के बाद, अंतिम संस्कार के बाद शरीर फिर इन्हीं पांच तत्वों में मिल जाता है। ब्रह्म विलीन हो जाता है महाब्रह्म में। हर अणु वापस चला जाता है अपने मूल में और एक बार फिर सृजन की तैयारी शुरू होती है।

अनदेखा बंधन

पंचभूतों को ऐसे भी समझिए कि हम जो अनाज खाते हैं, वह मिट्टी में उगता है। हमारे शरीर में लगता है और शरीर फिर मिट्टी में मिल जाता है। यह मिट्टी न जाने कितने बरसों से इस धरती पर घूम रही होगी। न जाने कितने रूप बदले होंगे इसने। कभी इसने इंसान का रूप धरा होगा, कभी शेर का, लेकिन इसका मूल कभी नहीं बदला। न इसका ब्रह्म बदला और न एतम। हमने जो हवा ली, वह कभी किसी और ने भी सांसों में भरी होगी। यूँ अणुओं ने हर किसी को एक बंधन में भी बांध रखा है। एक अनदेखा रिश्ता कायम कर दिया है सभी के बीच। सभी का सम्मान मुण्डकोपनिषद का मंत्र है, ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात् यानी यह संपूर्ण जगत ब्रह्म से ही व्याप्त है - आगे, पीछे, दाएं, बाएं, ऊपर, नीचे, हर दिशा में। जब सभी में वही परम तत्व है, तो हर जीव और वस्तु को सम्मान देना चाहिए। यही विचार हमें वसुधैव कुटुम्बकम् की ओर ले जाता है।

स्वयं को समग्रता से पहचान लेना ही असली धर्म है : ओशो

आत्म-विस्मरण नहीं है धर्म। धर्म है परिपूर्ण रूप से और भावना से पा लेंगे। लेकिन मनुष्य का मन से आत्म-स्मरण। स्वयं को भूल नहीं जाना है, स्वयं को उसकी परिपूर्णता में जान लेना है। स्वयं को किसी में डुबा नहीं देना है, बल्कि खुद को अपनी समग्रता में पहचान लेना है। ज्ञान मार्ग नहीं है। ज्ञान ही रोक लेता है, अटका लेता है। ज्ञान का बोझ मन को इतना भारी कर देता है कि फिर सत्य तक की यात्रा करना कठिन हो जाता है। ज्ञान के तट से जिनकी नाव बंधी है, वे सत्य के सागर में यात्रा नहीं कर सकेंगे। स्वभावतः, यदि ज्ञान मार्ग नहीं है, तो एक दूसरा विकल्प है भक्ति और कल्पना का। यदि ज्ञान सत्य का द्वार नहीं है, तो फिर भक्ति है, समर्पण है, भावना है, कल्पना है।

भक्ति भी मार्ग नहीं है। यदि ज्ञान मार्ग नहीं है, तो कल्पना तो और भी मार्ग नहीं हो सकती है। ज्ञान यदि द्वार नहीं है, तो स्वप्न तो और भी द्वार नहीं हो सकता है। ज्ञान है तर्क, भक्ति है स्वप्न। ज्ञान है विचार, भक्ति है कल्पना। मनुष्य का मन या तो तर्क करना जानता है या कल्पना करना। मनुष्य के मन की क्षमता है उन स्वप्नों को देख लेने की, जो वास्तविक नहीं हैं। बल्कि मन जिन बातों को देखना चाहता है, स्वप्न या कल्पना में उन्हें देख लेता है। जिसे जीवन में उपलब्ध नहीं कर पाता, उसे सपने में पा लेता है। हम सभी सपने देखते हैं। स्वप्न परिपूर्ण हैं। जिंदगी में यथार्थ में जो नहीं मिलता, स्वप्न उसे पूरा कर देते हैं।

तो जिस सत्य को ज्ञान से, विचार से नहीं खोजा जा सका, सोचा होगा कि उसे हम स्वप्न, कल्पना



जो भी कल्पना करेगा, वह उसके मन की सृष्टि होगी जो सत्य होने को नहीं है। सत्य के लिए कल्पना करना जरूरी नहीं है। सब तरह की कल्पना छोड़कर जो देखता है, वही सत्य को उपलब्ध होता है। पर हमारा मन इतना समर्थ है कल्पना करने में कि जिस बात का सुझाव हमारे मन में बैठ जाए, वह हमें प्रतीत भी होने लग सकता है।

जब हिंदू भगवान की कल्पना करता है, तो उन भगवान की नाक-नक्शा हिंदू से मिलता-जुलता होता है। जब नोग्रो करता है भगवान की कल्पना, तो उनके आँठ मोटे, बाल घुंघराले होते हैं। जब चीनी करता है भगवान की कल्पना, तो उनका रंग पीला होता है और गाल की हड्डियां उभरी हुई होती हैं और नाक चपटी होती है। हम अपनी ही कल्पना में तो अपने भगवान को निर्मित कर लेंगे। पर इस कल्पना में हम जो भी बनाएंगे, वह हमसे ऊपर नहीं जा सकता।

एक आदमी राष्ट्र की सेवा में लग जाता है, पागल की भांति, तो खुद को भूल जाता है, बहुत सुख मिलता है। एक आदमी समाज की सेवा में अपने को डुबा देता है और अपनी आइडेंटिटी कर लेता है समाज के साथ, अपने को भूल जाता है। एक आदमी धर्म की रक्षा के लिए पागल हो जाता है। बस किसी चीज में खुद को भूलने का उपाय मिल जाए जिसमें मैं अपने को खो सकूँ। जैसे ही मैं अपने को खो दूंगा, एक अद्भुत नशा पैदा हो जाएगा। उस नशे में मुझे अपना स्मरण नहीं रहेगा। स्मरण नहीं रहेगा, तो दुख नहीं है, पीड़ा नहीं है।